विकास का साम्राज्यवादी मॉडल

सय्यद सआदतुल्लाह हुसैनी
अनुवाद
मुहम्मद अली शाह शुऐब
पुनरीक्षण
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

दो शब्द 5

विकास का साम्राज्यवादी मॉडल 7

आर्थिक विकास के पैमाने 9

विकास-सम्बन्धी प्राथमिकताएँ और सरकारी ख़र्च 12

कृषि-संकट 16

शहरी ग़रीबों पर प्रभाव 22

विकास से सम्बन्धित अत्याचार 24

विशेष आर्थिक ज़ोंस 25

पर्यावरण-संकट 27

इस्लाम का दृष्टिकोण 28

राज्य के कर्त्तव्य 37

Sources 39

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा दयावान अत्यन्त कृपाशील है।'

दो शब्द

साम्राज्यवाद स्वयं में ही एक दमनकारी और शोषण पर आधारित व्यवस्था है। लेकिन जब साम्राज्य पूँजीवादियों के हाथ में चला जाए तो इसका परिणाम तदधिक भयावह हो जाता है। पूँजीवादी साम्राज्य केवल अर्थव्यवस्था पर ही अपना वर्चस्व स्थापित करके शान्त नहीं हो जाता बल्कि उसका शिकार समाज और राजनीति भी होती है और फिर शोषण का एक न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ होता है। उसका शिकार केवल कमज़ोर वर्ग ही नहीं होता बल्कि समूचा वातावरण दूषित होकर रह जाता है। इससे एक ओर सामाजिक भेदभाव उत्पन्न होता है तो दूसरी ओर जलवायु प्रदूषण जैसे संकट उत्पन्न होते हैं। जिसका नतीजा आज हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। फिर शिक्षा और रोज़गार इत्यादि के क्षेत्र में सबको समान अवसर न मिल पाने के कारण ग़रीब और अधिक ग़रीब होता चला जाता है तथा पूँजीपति की गाँठ और अधिक मोटी व मज़बूत होती जाती है। उनकी भोग विलासितापूर्ण जीवन शैली के नतीजे में उपभोकतावाद को बढ़ावा मिलता है। लोगों में उनकी देखा-देखी ज़रूरत से अधिक चीज़ें ख़रीदने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। इससे पूँजीवादियों को ब्याज का कारोबार चमकाने का ख़ूब अवसर मिलता है और सामाजिक समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेती हैं।

इस पूरे परिदृश्य में मीडिया बहुत महत्त्वपूर्ण रोल अदा करता है। चूँकि मीडिया पूँजीवाद की कठपुतली होता है इसलिए वह उन्हीं बातों को प्रचारित और प्रसारित करता है जिनमें साम्राज्यवाद का हित होता है।

उपरोक्त परिस्थितियों को सामने रखते हुए जमाअते-इस्लामी हिन्द ने 2008 ई. में एक साम्राज्यवाद विरोधी अभियान चलाया था। यह अभियान उन लाखों और करोड़ों लोगों के दिल की

आवाज़ थी जो इस पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण का शिकार हैं।

इस अभियान में जहाँ एक ओर पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण और अत्याचार के नतीजे में होनेवाली तबाहकारियों से लोगों को परिचित कराया गया था वहीं इस्लाम को वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में पेश भी किया गया था।

इस अभियान के अवसर पर पुस्तिकाओं की एक शृंखला (Series) प्रकाशित की गई थी जिनमें पूँजीवादी साम्राज्य का विभिन्न पहलुओं से अध्ययन कर उससे होनेवाली तबाहियों को सहज रूप में प्रस्तुत किया गया था और इस्लाम को एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया था। इन पुस्तिकाओं की महत्ता और लोकप्रियता को देखते हुए इनको पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। चूँकि ये पुस्तिकाएँ 2008 ई॰ में लिखी गई थीं इसलिए इनमें तत्कालिक घटनाओं का उल्लेख भी कहीं-कहीं हुआ है। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस बात का ध्यान रखें।

हमें आशा है कि ये पुस्तिकाएँ पाठकों के लिए लाभकारी सिद्ध होंगी।

हमारा पूरा प्रयास रहा है कि प्रूफ़ आदि की दृष्टि से इन पुस्तिकाओं में कोई त्रुटि न रहे। लेकिन यदि कहीं कोई त्रुटि पाई जाए तो पाठकगण हमें अवश्य सूचित करें हम उनके आभारी होंगे।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह कृपाशील, दयावान के नाम से।"

विकास का साम्राज्यवादी मॉडल

पूँजीवादी साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण और बुनियादी नारों में से एक नारा 'विकास' का नारा है। वह दुनिया के सभी ग़रीब देशों को विकास और उन्नति का स्वप्न दिखाता है। विकास का मतलब यह बताया जाता है कि देश की कुल दौलत और विदेशी कारोबार बढ़े। उद्योग-धन्धे स्थापित हों और पैदावार में बढ़ोत्तरी हो। शहर फलें-फूलें। सड़कें चौड़ी और ख़ूबसूरत बनें। जगमगाते शॉपिंग मॉल और आसमान को छूती इमारतें बनें। एयरपोर्टस बनें, स्टॉक मार्केट का संवेदनशील सूचकांक बढ़े। लोग ज़्यादा ख़र्च करने लगें और ऐश व आराम की ज़िन्दगी गुज़ारने लगें। पार्टियाँ हों, होटल आबाद हों, शहरों की रौनक़ में बढ़ोत्तरी हो आदि।

साम्राज्यवाद के निकट इसी कृत्रिम चकाचौंध का नाम 'विकास' है। इस विकास के लिए वह इस बात को ज़रूरी समझता है कि व्यापारियों और उद्योगपतियों को बे लगाम छोड़ दिया जाए। व्यापार, उद्योग-धन्धों और पूँजी को किसी क़ानून का पाबन्द न बनाया जाए। सरकार का रोल सीमित हो। वह मात्र व्यापार और उद्योग को सहूलतें जुटाने का काम करे। ग़रीबों की मदद करना बन्द कर दे। छूट (Subsidies) न दे। समाजी कामों में ख़र्च न करे और इन सारी 'फ़ुज़ूल ख़र्चियों' से बचे हुए पैसे को बाह्य ढाँचे (इन्फ्रास्ट्रक्चर) यानी रोड, ऐयरपोर्ट आदि बनाने में ख़र्च करे।

पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक अर्थशास्त्री 'विकास' की परिभाषा देश की कुल दौलत और व्यापारिक एवं औद्योगिक सरगर्मियों को बुनियाद बनाकर करते हैं। 'देश की समग्र (कुल) दौलत में बढ़ोतरी', 'देश में अंजाम दी जानेवाली व्यापारिक और औद्यौगिक गतिविधियों में बढ़ोतरी', 'खेती पर आधारित अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यस्था की ओर बढ़ने की रफ़्तार', 'प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी की रफ़्तार' और 'टेक्नालॉजी के इस्तेमाल और आधुनिक जीवन-शैली को अपनाने की रफ़्तार' आदि वाक्यों के द्वारा अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को परिभाषित करते हैं।[1]

कुछ अर्थशास्त्री तो नवीनीकरण (Modernization) और पश्चिमीकरण

(Westernisation) आदि शब्दों का प्रयोग बे झिझक विकास के समानार्थी (पर्यायवाची) के रूप में करते हैं। दूसरे शब्दों में उनके निकट विकास या तरक़्क़ी का अर्थ है पश्चिमीकरण।[2]

तरक़्क़ी या विकास की इस अवधारणा का स्पष्टीकरण उस प्रसिद्ध नीति से होता है जिसे 'वाशिंगटन मतैक्य' (Washington Consensus) कहा जाता है। मतैक्य (सर्वसम्मति) के शब्द से भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह दुनिया के देशों के बीच कोई वैश्विक मतैक्य था। यह 'मतैक्य' वास्तव में अमरीका के वित्त मन्त्रालय और उसकी सेवक संस्थाओं आई॰ एम॰ एफ़॰ और विश्व बैंक के बीच था। 1989 ई0 से इस "मतैक्य" को 'विकास' के नाम पर सारी दुनिया पर थोपने की कोशिश की जा रही है और आई एम एफ़ तथा विश्व बैंक अपनी सारी वित्तीय शक्ति— अमरीका, यूरोप और सारा विकसित ब्लॉक— राजनीतिक, दूतावासी और फ़ौजी दबाव इस्तेमाल करते हुए दुनिया को इन नीतियों को अपनाने पर मजबूर कर रहा है। यह 'मतैक्य' वास्तव में दस नीतियों के समूह का नाम है—

(1) वित्तीय नीति में अनुशासन (Discipline) अर्थात ख़र्च कम करना।

(2) सब्सिडीज़ अर्थात सरकार की ओर से ग़रीबों को दी जानेवाली छूटों को कम करना।

(3) टैक्स रिफ़ॉर्म, अर्थात ग़रीबों पर भी टैक्स लगाना।

(4) सूद की दरों को बाज़ार पर छोड़ देना।

(5) विनिमय की दरों को प्रतिस्पर्धात्मक (Competetive) बनाना।

(6) स्वतन्त्र व्यापार अर्थात आयात पर हर प्रकार की पाबन्दियों और रुकावटों को समाप्त करना।

(7) सीधे तौर पर विदेशी पूँजीनिवेश (FDI) पर पाबन्दियों को समाप्त करना।

(8) सरकारी स्वामित्त्व की संस्थाओं का निजीकरण

(9) डी-रेगुलेशन अर्थात व्यापार, उद्योगधन्धों और वित्तीय बाज़ारों में किसी भी प्रकार के क़ानून और नियम को ख़त्म करना।

(10) स्वामित्त्व-अधिकार को क़ानूनी सुरक्षा प्रदान करना।[3]

इन नीतियों और पॉलीसियों से हो सकता है कि देश के कुल धन को बढ़ाने में मदद मिले, लेकिन यह बढ़ी हुई दौलत मात्र कुछ बड़े पूँजीपतियों की जेबों में चली जाती है और आम इनसानों की हालत में कोई अन्तर नहीं आता।

वास्तविकता यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था दौलत पैदा करने में बहुत कामयाब है लेकिन दौलत के विभाजन में नाकाम है। अतः विकास के इस मॉडल में देश की दौलत में तो बढ़ोतरी हो जाती है लेकिन इस बढ़ोतरी का लाभ बहुत ही कम लोगों को मिलता है और इन कुछ लोगों को लाभ पहुँचाने के लिए आम जनता को अनगिनत नुक़सान उठाने पड़ते हैं। बहुत ही कम चेहरे जगमगाते हैं तो इसकी क़ीमत करोड़ों आँखों को ख़ून के आँसुओं के द्वारा अदा करनी पड़ती है। ऐसे विकास का क्या लाभ जिसके नतीजों से समाज की बहुसंख्या वंचित रहे! एडवर्ड ऐबे ने कहा था—

"Growth for growth's sake is the ideology of Cancer cells."

कैंसर का जानलेवा रोग शरीर की कोशिकाओं में बे मक़सद और अव्यवस्थित बढ़ोतरी की वजह से पैदा होता है। अतः कोशिकाओं में बे-मक़सद बढ़ोतरी कैंसर पैदा करती है। इसी प्रकार जब किसी देश की दौलत भी किसी समाजी वीज़न के बिना तरक्क़ी करती है तो इससे मायूसी, आशाहीनता (Despair), प्रत्याक्रमण (Reaction) और हिंसा (Violance) के कैंसर जन्म लेते हैं।

आर्थिक विकास के पैमाने

इस अन्यायपूर्ण अवधारणा का सबसे बड़ा प्रमाण वे सूचकांक और पैमाने हैं जिससे किसी देश के आर्थिक विकास को जाँचा जाता है। 'विकास' को जाँचने के जो सूचकांक और पैमाने नवपूँजीवादी साम्राज्य ने खोजे और गढ़े हैं वे सारे के सारे वे हैं जिनसे यह तो मालूम होता है कि देश की समग्र दौलत किस गति से बढ़ रही है लेकिन यह बिल्कुल पता नहीं चलता कि यह बढ़ी हुई दौलत जा कहाँ रही है और इससे समाज की ग़रीबी, भुखमरी और कंगाली को ख़त्म करने में क्या मदद मिल रही है?

इन पैमानों में सबसे प्रसिद्ध पैमाना स्टॉक मार्केट (Stock Market) का संवेदनशील सूचकांक (Sensex) है। हमारा राष्ट्रीय मीडिया इस सूचकांक से सम्बन्धित पल-पल की ख़बरें हमें पहुँचाता रहता है और हम

समझते हैं कि यह हमारे आर्थिक स्वास्थ्य का सबसे महत्त्वपूर्ण पैमाना है। लेकिन वास्तविकता यह है कि संवेदनशील सूचकांक का हिसाब मात्र 30 बड़ी कम्पनियों के शेयर्ज़ की क़ीमतों की बुनियाद पर लगाया जाता है।[4]

इन 30 बड़ी कम्पनियों के शेयर्ज़ की क़ीमत में उतार-चढ़ाव से कुछ बड़े पूँजीपतियों की दौलत में तो कमी या ज़्यादती हो सकती है लेकिन भारत की 70 प्रतिशत जनता की सेहत पर इसका क्या असर हो सकता है?

इसी तरह का एक पैमाना सकल घरेलू उत्पाद या GDP का पैमाना है। इससे सम्बन्धित सूचकांक प्रतिव्यक्ति आय (Per Capital income) का सूचकांक है। देशभर में होनेवाली समग्र अर्थिक गतिविधियों से प्राप्त होनेवाली आय को जमा कर दिया जाए तो उसे जी॰ डी॰ पी॰ कहा जाता है। इसमें टाटा, बिरला और अम्बानी बन्धुओं की आय भी शामिल होती है और विदर्भ के उस किसान की भी जो आत्महत्या की तैयारी कर रहा है। टाटा, बिरला की दौलत बढ़ेगी तो देश का जी॰ डी॰ पी॰ भी बढ़ेगा। यह जी॰ डी॰ पी॰ अगर 9 या 10 प्रतिशत की गति से बढ़ रहा है तो इसमें विदर्भ के किसानों के लिए क्या ख़ुश-ख़बरी हो सकती है?

कुछ अर्थशास्त्रियों ने, जिनमें प्रमुख रूप से महबूबुल-हक़ और अमरत्य सेन हैं, इस धोखाबाज़ी के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने कहा कि देश के विकास को नापने का यह तरीक़ा ठीक नहीं है। सही तरीक़ा यह है कि यह देखा जाए कि देश में कितने प्रतिशत लोग शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं? कितने प्रतिशत लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ मिल पा रही हैं? उचित खाना उन्हें मिल पा रहा है या नहीं? साफ़ पानी, आवश्यकतानुसार घर, आवश्यकतानुसार आय और अन्य बुनियादी सहूलतें प्राप्त हैं या नहीं? इस उद्देश्य के लिए उन्होंने एक वैकल्पिक सूचकांक 'ह्यूमन डिवलेपमेंट इंडेक्स' (HDI) प्रस्तावित किया। सयुंक्त राष्ट्र संघ (UNO) की संस्था यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ (UNDP) दुनिया के विभिन्न देशों का डिवेलपमेंट इंडेक्स निश्चित करती है[5] लेकिन समाचारपत्रों और आर्थिक एवं व्यापारिक पत्रिकाओं का अवलोकन कीजिए तो इनमें आपको केवल जी डी पी या प्रतिव्यक्ति आय का ही उल्लेख मिलेगा, ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स का नहीं।

पिछले कुछ सालों से एक और 'संख्या' हमारे मीडिया और अर्थशास्त्रियों की दिलचस्पी का विषय बनी हुई है, और वह है अरबपतियों की विश्व-सूची में भारतियों की संख्या। इस संख्या के अनुसार हम दुनिया में चौथे नम्बर पर हैं।[6]

जी॰ डी॰ पी॰ में विकास के अनुसार हम दुनिया में दूसरे नम्बर पर हैं लेकिन उपर्युक्त ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स के अनुसार विश्व-सूची में हमारा नम्बर 134 है।[7]

जी॰ डी॰ पी॰ या प्रतिव्यक्ति आय आदि के सन्दर्भ से हम निरन्तर आगे की ओर बढ़ रहे हैं और ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स के सन्दर्भ से यह मामला है कि पिछले साल हम 132वें स्थान पर थे और इस साल हम 134वें स्थान पर। बल्कि पिछले चार सालों से हर साल हम दो पायदान नीचे उतर रहे हैं। 2006 (126), 2007 (128), 2008 (132), 2009 (134)।[8]

लेकिन हमारे विद्वान हमें यही बताते हैं कि हम आर्थिक दृष्टि से तरक्क़ी कर रहे हैं। हमारे वित्त मन्त्री हमें जी॰ डी॰ पी॰ के बिल्कुल ताज़ा-ताज़ा आँकड़ों से निरन्तर सूचित रखने का प्रबन्ध करते हैं। लेकिन यह प्रबन्ध ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स के सम्बन्ध में नहीं होता। वित्त मन्त्री के भाषणों में, राजनीतिक पार्टियों के घोषणापत्रों में, योजना आयोग के दस्तावेज़ों में, हर जगह जी॰ डी॰ पी॰ के लक्ष्य मुख्य रूप से शामिल होते हैं लेकिन ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स के लक्ष्य का उल्लेख बहुत कम और सरसरी ही होता है। इससे पता चलता है कि हमारी विकास की अवधारणा क्या है। विकास का अर्थ देश में दौलत की रेल-पेल का होना है। इस बात को नहीं देखा जाता कि इसका लाभ देश की आम जनता को मिल रहा है या कुछ थोड़े से बड़े पूँजिपतियों को।

इस सम्बन्ध में एक और दिलचस्प घटना का उल्लेख करना उचित होगा। इस साल (2009) मानसून बड़ी हद तक असफल रहा और देश के कई क्षेत्रों में सारी फ़सल बरबाद हो गई। योजना आयोग के आँकड़ों के अनुसार हमारे देश की आधी से अधिक जनसंख्या आज भी खेती पर निर्भर करती है। यह वह ग़रीब जनसंख्या है जिसके लिए फ़सल बरबाद होने या एक साल की आय के प्रभावित होने का अर्थ केवल बैंक बैलेंस की बढ़ोतरी की दर में कमी नहीं है, बल्कि एक साल की आय के प्रभावित होने का अर्थ भुखमरी, मौत और आत्महत्या है।

योजना आयोग के डिप्टी चेयरमैन मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने हमें इस अवसर पर तसल्ली दी कि मानसून का असफल होना और फ़सल का बरबाद होना अफ़सोसनाक ज़रूर है लेकिन घबराने की बात नहीं, इससे जी॰ डी॰ पी॰ पर किसी विशेष प्रभाव की सम्भावना नहीं है।

क्योंकि खेती का रोल हमारे जी॰ डी॰ पी॰ में केवल 20 प्रतिशत है।[9] अर्थात चाहे आत्महत्याओं की गति बढ़ जाए, भूखे इनसानों, ख़ून की कमी (अनीमिया) की शिकार औरतों और कुपोषण से प्रभावित बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी हो जाए लेकिन ऐ मेरे देशवासी हिन्दुस्तानियो, ख़ुश रहो कि हमारा जी॰ डी॰ पी॰ और इसमें बढ़ोतरी की दर तो सही-सलामत है!

विकास-सम्बन्धी प्राथमिकताएँ और सरकारी ख़र्च

हमारे देश की पॉलीसी बनानेवालों ने जान-बूझकर अपनी प्राथमिकताएँ इस प्रकार निश्चित की हैं कि राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी का लाभ केवल बड़े-बड़े पूँजीपतियों को ही मिलता है। पॉलीसियों का रुख़ इस तरह है कि जिन सेक्टर्ज़ पर बड़े-बड़े पूँजीपति क़ब्ज़ा किए हुए हैं वही तरक़्क़ी कर रहे हैं। इन्हें सरकार की ओर से भरपूर सहयोग मिल रहा है और जो सेक्टर्ज़ ग़रीब जनता से सम्बन्धित हैं वे बराबर सिकुड़ रहे हैं।

एक ऐसे देश में जो ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स के अनुसार 134वें पायदान पर है और जहाँ दुनिया के ग़रीबों की आधी संख्या बसती है, राष्ट्रीय बजट का एक बड़ा हिस्सा स्वाभाविक रूप से ग़रीब जनता को ऊपर उठाने के लिए लगना चाहिए। लेकिन हमारे देश में सामाजिक कामों में ख़र्च अफ़सोसनाक हद तक कम है। यू पी ए सरकार ने यद्यपि कुछ बढ़ोतरी की है लेकिन वास्तविकता यह है कि अभी भी ग़रीब जनता की कामयाबी और उन्नति से सम्बन्धित क्षेत्रों पर ख़र्च बहुत कम है।

जनस्वास्थ्य को लीजिए। जनस्वास्थ्य की सूरते-हाल के अनुसार हमारा देश दुनिया के बदतरीन देशों में से एक है। हर साल हमारे देश में 56 लाख बच्चे समय पर और उचित उपचार न होने के कारण मर जाते हैं। यह संख्या दुनिया भर में मरनेवाले बच्चों की संख्या के आधे से अधिक है।[10] हमारे देश में हर साल सात लाख लोग डायरिया (हैज़ा) जैसी सरलतापूर्वक उपचार-योग्य बीमारी से मर जाते हैं।[11]

इस सूरते-हाल की अपेक्षा है कि हम सारी दुनिया से अधिक अपनी जनता के स्वास्थ्य पर ख़र्च करें। (जो अधिक बीमार होगा स्वाभाविक रूप से उसे उपचार पर अधिक ख़र्च करना होगा।) लेकिन यह कितनी हैरत की बात है कि जी डी पी के अनुपात से आम जनता के स्वास्थ्य पर ख़र्च के सन्दर्भ से वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइज़ेशन (WHO) ने 175 देशों की जो सूची बनाई है उसमें हम नीचे से पाँचवें पायदान पर हैं, अर्थात ऊपर से 171वें पायदान पर।[12]

हम जी डी पी का मात्र 0.8 प्रतिशत आम जनता के स्वास्थ्य पर ख़र्च करते हैं और इस मामले में अफ़्रीक़ा के सभी ग़रीब देश हमसे आगे हैं। यू पी ए सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में यह वादा किया था कि स्वास्थ्य पर जी डी पी का 3 प्रतिशत ख़र्च किया जाएगा। सरकार ने अब तक 6 बजट पेश कर दिए हैं और 3 प्रतिशत के लक्ष्य का दूर-दूर तक कोई पता नहीं है।

हाँ, सरकार महँगे कॉरपोरेट अस्पतालों और मेडिकल टूरिज़्म की पीठ ठोंकने में जी-जान से लगी हुई है। चेन्नई के अस्पतालों में इलाज करानेवाले मरीज़ों की 45 प्रतिशत संख्या विदेशों से आती है। इस समय कारपोरेट अस्पतालों का कुल व्यापार 35 बिलियन डालर का है और कहा जा रहा है कि यह व्यापार 12 से 15 प्रतिशत तक सालाना असाधारण गति से तरक़्क़ी करता हुआ 2020 ई तक 280 बिलियन डॉलर हो जाएगा।[13]

यही मामला शिक्षा का है। काग़ज़ पर सब इस बात पर सहमत हैं कि शिक्षा हमारे देश की आम जनता की एक बड़ी और महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है और शिक्षा पर हमारा ख़र्च बढ़ना चाहिए। काँग्रेस के चुनावी घोषणापत्र में और यू पी ऐ के न्यूनतम साझा कार्यक्रम में यह वादा मौजूद है कि सरकार शिक्षा पर ख़र्च को जी डी पी के 6 प्रतिशत तक बढ़ाएगी लेकिन यू पी ए सरकार के 6 सालों के बाद भी न केवल यह कि हमारा शिक्षा पर ख़र्च 3 प्रतिशत से भी कम है बल्कि इसमें समय-समय पर गिरावट भी आ जाती है। यू पी ए सरकार के प्रारम्भिक सालों में शिक्षा पर कुल ख़र्च और जी डी पी का अनुपात हर साल गिरता रहा। यहाँ तक कि वह तीन प्रतिशत से भी कम हो गया और 2007-08 में फिर 3 प्रतिशत पर आकर ठहर गया।[14]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्यूबा जी डी पी का 19 प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करता है। डेन्मार्क, स्वीडन और इसराईल जैसे विकसित देश जी डी पी का क्रमशः 9 प्रतिशत और 8-8 प्रतिशत ख़र्च करते हैं। इनके अतिरिक्त केन्या और यमन जैसे ग़रीब और पिछड़े देश भी अपनी जी डी पी का क्रमशः 7, 10 और 8. 5 प्रतिशत ख़र्च करके इस सम्बन्ध में हमसे आगे हैं।[15]

2009-10 के बजट में शिक्षा का अधिकार (Right to Education) पर कोई रक़म निर्धारित ही नहीं की गई है। इससे मालूम होता है कि इस क़ानून पर अमल करने में सरकार कितनी गम्भीर है।

एक तरफ़ शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतों की यह सूरते-हाल है और दूसरी तरफ़ इसके बिलकुल विपरीत इन्फ्रास्ट्रक्चर (रोड, एयरपोर्टस, बन्दरगाहें, बिजली आदि) के क्षेत्र में हमारा ख़र्च निरन्तर बढ़ रहा है।

साम्राज्यवाद इस क्षेत्र पर ख़र्च बढ़ाना चाहता है। क्योंकि इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के पूँजीपतियों को अपने व्यापार चमकाने और दौलत लूटने में मदद मिलती है। योजना आयोग के आँकड़ों के अनुसार 2006-07 में हम अपने राष्ट्रीय उत्पाद का 5 प्रतिशत इन्फ्रास्ट्रक्चर (रोड, पुल, एयरपोर्ट्स और ट्रांसपोर्ट्स आदि) पर ख़र्च कर रहे थे और 2011-12 तक इस अनुपात को बढ़ाकर दोगुना कर देने की योजना है।[16]

शिक्षा और स्वास्थ्य पर ख़र्च में जी डी पी का तीन प्रतिशत और दो प्रतिशत बढ़ाना इतना मुश्किल महसूस हो रहा है कि बावजूद वादों और जनता के ज़बरदस्त दबाव के इस सम्बन्ध में एक इंच भी हम आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, लेकिन इन्फ्रास्ट्रक्चर में अचानक जी डी पी का चार प्रतिशत बढ़ा देना बिलकुल मुश्किल महसूस नहीं हो रहा है!

कोई कह सकता है कि भारत जैसे पिछड़े देश में जहाँ गाँवों में बिजली और सड़क की बुनियादी सुविधाओं की भी कमी है, इन्फ्रास्ट्रक्चर पर ख़र्च भी ज़रूरी है। लेकिन दुर्भाग्य से वास्तविकता यह है कि सरकार इन्फ्रास्ट्रक्चर के मामले में भी ग़रीबों और ग्रामीणों को लाभ पहुँचाने के लिए तैयार नहीं है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में इन्फ्रास्ट्रक्चर पर जो 20,56,150 करोड़ रुपये ख़र्च होने हैं उसका मात्र पाँचवा हिस्सा अर्थात 4,35,349 करोड़ रुपये ग्रामीण इन्फ्रास्ट्रक्चर पर ख़र्च होता है। जबकि आबादी का अनुपात यह है कि गाँवों में 65 प्रतिशत भारत की जनसंख्या आबाद है।[17]

धनी पूँजीपतियों को सहयोग और ग़रीब जनता की उपेक्षा करने का मामला केवल सेक्टर्ज़ के सन्दर्भ से प्राथमिकताओं तक सीमित नहीं है। छूटों और सीधे तौर पर वित्तीय सहायता आदि के मामले में भी दया-दृष्टि दौलतमन्द व्यापारियों की तरफ़ ही उठती है। पिछले साल जब तत्कालीन वित्त मन्त्री पी चिदम्बरम ने चुनावी मजबूरियों को सामने रखते हुए किसानों के 65,000 करोड़ रुपयों के क़र्ज़े माफ़ करने का एलान किया था तो पूरे देश में हंगामा मच गया था। इसे एक शोहरत-पसन्द (Populist) निर्णय बताया गया था और कहा गया था कि इससे वित्त-व्यवस्था में ज़बरदस्त असन्तुलन पैदा होगा और इतनी बड़ी

रक़म इस तरह माफ़ कर देना बड़े संकट का कारण बन सकता है। अर्थशास्त्रियों की समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं और सम्पादकीय लिखे गए। कॉरपोरेट लीडरों के बयान और इंटरव्यू छपे। सबका यही मानना था कि चुनावों को सामने रखते हुए एक मूर्खतापूर्ण निर्णय लिया गया है।

जबकि इसी साल इसी बजट में कॉरपोरेट सेक्टर और धनी लोगों को राजस्व (वुसूलियाबी) में जो राहत दी गई है उसका अन्दाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि राजस्व (वुसूलियाबी) की यह रक़म किसानों के माफ़ किए गए क़र्ज़ों की रक़म की तीन गुना यानी लगभग 2 लाख करोड़ रुपये थी।[18]

धनी लोगों को छूट दिए जाने का यह सिलसिला बराबर जारी है। 2008-09 में 4,18,095 करोड़ रुपये के धनी लोगों के टैक्स माफ़ किए गए। (Revised Estimates) यह रक़म ग़रीबों को दी जानेवाली कुल छूटों (Subsidies) का तीन गुना है। यू पी ए सरकार के पाँच सालों में टैक्सों में जो छूट दी गई उसकी कुल रक़म इस साल 2009-10 के कुल बजट से अधिक है।[19]

हमारे देश की लगभग आधी आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे ज़िन्दगी गुज़ार रही है। यहाँ दुनिया के ग़रीबों की लगभग आधी संख्या बसती है और आधे से अधिक बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। लेकिन इसी देश में 2008 की फ़ोर्ब्स की सूची के अनुसार दुनिया के पाँचवें, छठे और सातवें सर्वाधिक धनी व्यक्ति भी रहते हैं। अरबपतियों की संख्या के हिसाब से हम दुनिया में छठे पायदान पर और एशिया में पहले नम्बर पर थे। जापान, चीन और फ़्रांस जैसे देश भी इस मामले में हमसे पीछे हैं। दुनिया के दस सर्वाधिक धनी लोगों में सबसे अधिक (चार) भारतीय थे, अमरीका से भी अधिक।[20]

सवाल यह है कि क्या दुनिया के सर्वाधिक धनी लोगों को देश के सर्वाधिक ग़रीब लोगों की शौचनीय अवस्था से मुक्त रखा जा सकता है? इन अरबपतियों की दौलत का एक हिस्सा ग़रीबों की भलाई और उनके विकास के लिए इस्तेमाल में लाना बिलकुल स्वाभाविक और आवश्यक होगा? लेकिन हमारे देश में मामला इसके विरुद्ध है। अमरीका जैसे पूँजीवादी देश में भी सर्वाधिक धनी लोगों पर 45 प्रतिशत टैक्स लगाया जाता है (टैक्स की सबसे ऊँची दर), जबकि ब्रिटेन में 50 प्रतिशत और चीन में 45 प्रतिशत लगाया जाता है।[21]

हम दुनिया की सर्वाधिक ग़रीब आबादी की समस्याओं के हल के लिए सर्वाधिक धनी भारतियों से अधिक से अधिक 30 प्रतिशत की दर से टैक्स लेते हैं, इसके बावजूद इसमें छूट देने का सिलसिला निरन्तर जारी है। टैक्स में ये छूट भी इसी तरह हैं कि आप जितने अधिक धनी हैं आपके लिए छूट उतनी ही अधिक है। उदाहरण के लिए इस साल 2009-10 के बजट में मध्यम वर्ग के लोगों के लिए तो बहुत मामूली राहत अर्थात टैक्स माफ़ी की सीमा 10,000 रुपये बढ़ाकर दी गई लेकिन 10 लाख से अधिक आमदनीवाले धनी लोगों को 10 प्रतिशत सरचार्ज माफ़ कर दिया गया और इस तरह टैक्स की सम्भावित वुसूलयाबी में से तुरन्त 11700 करोड़ रुपयों की कमी कर दी गई। अतः किसी की आय अगर दस लाख है तो इस बजट में उसके लिए टैक्स में कुल राहत 1030 रुपयों की है और अगर आय 10 लाख रुपयों से एक रुपया भी बढ़ जाए तो राहत एक दम बढ़कर 22145 रुपये हो जाती है और अगर आय पचास लाख हो तो कुल राहत डेढ़ लाख रुपयों के लगभग होगी। इसके अतिरिक्त वेल्थ टैक्स में कमी, फ़्रंज बैनिफ़िटैक्स की माफ़ी आदि जैसी छूट भी केवल धनी लोगों या पूँजीपतियों को लक्ष्य बनाकर दी गई हैं।[22]

सब्सिडीज़ (सरकारी छूट) के विरुद्ध तो ख़ूब हंगामा होता है लेकिन सरकार एयरलाइंज़ को बेल-आउट पैकेज उपलब्ध करे या महाराष्ट्र सरकार आई पी एल मैचों पर से मनोरंजन कर हटा दे तो न केवल यह कि उसका कोई विरोध नहीं होता बल्कि इस काम को 'विकास' के लिए अतिआवश्यक बताया जाता है।

अतः यह विकास का ऐसा मॉडल है जिसमें सारा फ़ोकस ख़ुशहाल और पूँजीपतियों पर है। सरकार की नीतियाँ और छूट उन्हीं के लिए हैं। देश की दौलत केवल उनपर और उनकी आवश्यकताओं पर ही ख़र्च होती है।

कृषि-संकट

चूँकि साम्राज्यवादी मॉडल में विकास का अर्थ केवल बड़े-बड़े पूँजीपतियों की तरक्क़ी है, इसलिए इस मॉडल में ग़रीबों से सम्बन्धित सैक्टरों की तरक्क़ी की कोई योजना नहीं है। खेती हमारे देश में एक ज़माने में 80 प्रतिशत लोगों की कमाई का साधन थी। सरकारी नीतियों ही के नतीजे में लोग खेती छोड़ रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद आधे से अधिक भारतीय अभी भी खेती पर ही निर्भर हैं। नीतियों की दिशा ऐसी

है कि खेती में कोई विकास नहीं हो रहा है। 2007-2008 में हमारे जी डी पी में विकास दर 9 प्रतिशत से भी अधिक थी जबकि खेती के क्षेत्र में विकास दर मात्र 4 प्रतिशत थी जो पिछले साल 2008-09 में घटकर केवल 1.8 प्रतिशत रह गई है।[23]

खेती और विशेष रूप से ग़रीब किसानों की कमर तोड़ने के विभिन्न तरीक़े साम्राज्यवादियों के पास मौजूद हैं। खेती के क्षेत्र में विकास पर होनेवाले ख़र्चों में कमी, खाद आदि को दी जानेवाली छूट में तेज़ी से गिरावट, खाद्य पदार्थों के आयात, जिंस (अनाज आदि) में भविष्य के व्यापार (Future trade) की अनुमति, बीजों और खाद की मार्केट में

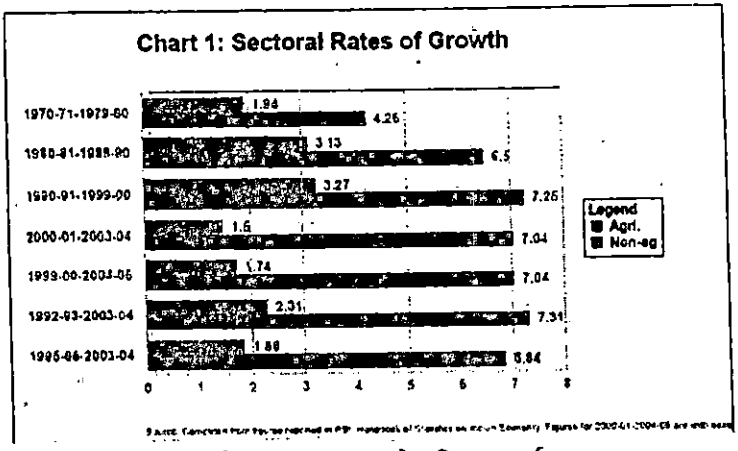

अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के एकाधिकार के लिए मार्ग प्रशस्त करना आदि कुछ महत्त्वपूर्ण नीतियाँ ऐसी हैं जिन पर सरकार 1991 ई॰ से अमल कर रही है और जिन्होंने हमारी खेती की कमर तोड़ने में महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया है। खेती की कमर तोड़ने का आरम्भ क़र्ज़ों से होता है। खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए आज़ादी के कुछ सालों बाद रिज़र्व बैंक ने बैंकों को यह निर्देश दे रखा था कि दिए गए कुल क़र्जों का 40 प्रतिशत प्राथमिक सेक्टर्ज़ के क़र्ज चाहनेवालों को दिया जाए। प्राथमिक सेक्टर्ज़ (Priority Sectors) में छोटे-छोटे उद्योग, खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित गतिविधियाँ शामिल थीं। मक़सद यह था कि सारे क़र्ज़े बड़े पूँजीवादी न ले उड़ें बल्कि खेती तथा छोटे उद्योगों के लिए भी क़र्ज़े उपलब्ध रहें।

इस नीति पर कई दशकों से अमल होता रहा है। लेकिन 1991 ई॰ के

वाद पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों की निगाहों में यह नीति बुरी तरह खटक रही है। 1993 ई. में निसमहन कमेटी ने प्राथमिक सेक्टर्ज़ को ख़त्म कर देने की सिफ़ारिश करा ली थी। यद्यपि सरकार ने इस सिफ़ारिश को स्वीकार नहीं किया लेकिन प्राथमिक सेक्टर में हर तरह की गतिविधियों को बढ़ावा दे डाला। अब प्राथमिक सैक्टर्ज़ में पेशेगत गतिविधियों, हाउसिंग, ट्रांस्पोर्ट और कॉरपोरेट कृषि के लिए मशीनों आदि को भी शामिल कर दिया गया। पहले इस कोटे में छोटे क़र्ज़े जारी किए जाते थे, लेकिन अब 40-40 लाख के क़र्ज़े भी जारी किए जा रहे हैं।

नतीजा यह है कि इस कोटे से भी धीरे-धीरे ग़रीब किसानों को क़र्ज़े मिलने बन्द हो गए। जो क़र्ज़े किसानों को दिए गए उनका भी बड़ा हिस्सा बड़े किसान ले उड़े और छोटे किसान स्थानीय साहुकारों के रहमो-करम पर छोड़ दिए गए, जो उन्हें इतने भारी ब्याज पर क़र्ज़े देने लगे जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती और परिणाम स्वरूप उनको आत्महत्याओं के लिए मजबूर करने लगे।[24]

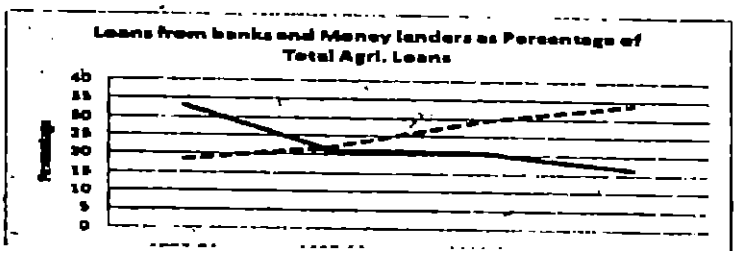

अतः बैंकों से जारी किए गए कुल क़र्ज़ों (Net Bank Credit) में खेती के लिए दिए गए क़र्ज़ों का अनुपात 1994 ई. में 77 प्रतिशत था जो 2004 ई. में घटकर 9 प्रतिशत रह गया। ग्रामीण क्षेत्रों में कमर्शियल बैंकों की शाख़ाओं की संख्या 35134 थी जो 2006 ई. में घटकर 30572 रह गई।[25]

सरकारी क़र्ज़ों से वंचित किसान साहूकारी क़र्ज़े लेकर खेती करते हैं तो अगली समस्या बीजों और खाद की पेश आती है। अब उनपर बहुराष्ट्रीय बड़ी कम्पनियों का क़ब्ज़ा है। उनके क़ीमती बीज केवल एक ही फ़सल के लिए काम करते हैं और उनकी तैयारी में इस बात को भी ध्यान में रखा गया है कि वे बीज केवल उसी समय काम करें जब उन्हें उनकी कम्पनियों द्वारा ही तैयार किया गया क़ीमती खाद भी उन्हें दिया जाए। इंटेलेक्चुअल प्रोपर्टी के ज़माने में किसान को यह अधिकार नहीं

है कि वह अपनी फ़सल से आनेवाले बीजों को अगली फ़सल के लिए इस्तेमाल कर सके।

मोंसांटो (Monsanto) कृत्रिम खेती तैयार करने की एक बड़ी कम्पनी है। इसका वार्षिक टर्न-ओवर 12 बिलियन डालर (भारत के कई बड़े राज्यों के बजट से अधिक) है। हमारे देश में यह खेती के सैक्टर्ज़ सबसे ताक़तवर कारक की हैसियत रखते हैं। इसने जिंस (अनाज-ग़ल्ला आदि) को बदलने के माध्यम से पूरे साल ज़्यादा फ़सल देनेवाले गेंहू, मक्का, सूरजमुखी, चावल और कुछ सब्ज़ियों और फलों के बीज़ तैयार किए हैं। ये बीज कम्पनी के लोगों के साथ बिकनेवाले कुछ विशेष खादों और कीटनाशक दवाइयों के इस्तेमाल के ज़रीए से ही कारगर होते हैं। मोंसांटो ने अमरीका में मौजूद अपनी विकसित प्रयोगशालाओं में विशेष टर्मिनेटर टेक्नॉलोजी (Terminator Technology) विकसित की है। ये बीज केवल एक फ़सल के लिए काम आते हैं। फ़सल के द्वारा मिलनेवाले फलों के बीजों को दोबारा फ़सल उगाने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

मोंसांटो अपने ज़बरदस्त प्रोपगेंडा अभियान के ज़रीए से– जिसमें वीडियोज़, कम्प्यूटर्ज़, फ़िल्म यहाँ तक कि हिन्दू धार्मिक पहचानों का भी बे झिझक इस्तेमाल किया जाता है– किसानों को इन मँहगे बीजों का आदी बना रही है।[26]

ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बीज, खाद और कीटनाशक दवाइयों पर अपना मुकम्मल क़ब्ज़ा करके अपने मनमाने तरीक़े से उनके दाम बढ़ाती रहती हैं। उदाहरण के लिए कपास की खेती की इनपुट क़ीमत (Input Price) अर्थात फ़सल बोने के लिए बीजों, खाद, दवाइयों, बिजली, मज़दूरी आदि पर कुल लागत पिछले कुछ सालों में 6 सौ गुना बढ़ गई है।[27]

फिर इन्हें कॉरपोरेट खेती से मुक़ाबला भी करना है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ ज़मीन की बनावट को बदलकर बीज में जिंस सम्बन्धी परिवर्तनों के ज़रीए से अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार की आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुएँ पैदा करने में लगी हुई हैं। पिछले 5 सालों में 8 बिलियन हैक्टेयर उपजाऊ ज़मीन खाद्य-वस्तुओं (ग़ल्ले) के बजाए ऐसी अनावश्यक वस्तुओं की खेती में बदल गई है जिनका इस्तेमाल केवल विकसित देशों में ही होता है। (उदाहरण के लिए शराब में इस्तेमाल होनेवाले अंगूर)। भारती एंटरप्राइज़र्ज़ 41 अरब रुपयों के पूँजीनिवेश से

पंजाब और हरियाणा की 20,000 एकड़ ज़मीन पर खेती कर रही है। 'ऐग्री प्रोड्यूस इंडिया' ने एक बिलियन डॉलर के पूँजीनिवेश से अन्य फ़सलों के साथ बायो-फ़्यूल की तैयारी के उद्देश्य से खेती शुरू कर दी है। रिलायंस रिटेल ने तो 250 बिलियन रुपयों के पूँजीनिवेश से कई कम्पनियाँ (जैसे रिलायंस एग्री-प्रोजैक्ट्स और रिलायंस इंटेग्रेटिड एग्री सोल्यूशन्ज) बना रखी हैं।[28]

यह कॉरपोरेट खेती साधारण किसान के बस की बात नहीं होती। इसके लिए उत्तम दर्जे की सांइसी कंसल्टेंसी, मँहगे बीज, खाद, दवाइयाँ और कभी-कभी विशेष प्रकार की मिट्टी, मशीनें आदि चाहिए होती हैं। फिर इन कैश-क्रोप्स (Cash Crops) की क़ीमतें भूमंडलीयकरण के इस दौर में अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार पर निर्भर होती हैं जो पल-पल विभिन्न कारणों से प्राभावित होती रहती हैं। एक आम ग़रीब इन सब चैलेंजों का सामना करने का साहस नहीं रखता।

इन सब मरहलों से गुज़रकर कोई मेहनती किसान कामयाब हो भी जाता है तो अब समस्या उसको बेचने और उचित दामों की वुसूलयाबी की है। किसान को उसकी मेहनत का बदला नहीं मिलता।

एक तरफ़ खाद्य-बीजों के उपभोग मूल्यों की क़ीमतों में बेपनाह बढ़ोतरी हो रही है और दूसरी तरफ़ किसान को मिलनेवाली क़ीमत में कोई बढ़ोतरी नहीं हो रही है। सारा लाभ बीच के सट्टेबाज़ लूट रहे हैं जो 2003 ई॰ में ग़ल्लों में भविष्य के व्यापार का दरवाज़ा खुलने के बाद इस क्षेत्र पर बहुत सरगरम हैं। एक अन्दाज़े के अनुसार हम खाद्य वस्तुओं की जो क़ीमत बाज़ार में अदा करते हैं उसका मात्र 20 से 25 प्रतिशत तक किसान को मिलता है जो कभी-कभी तो उसकी लागत से भी कम होता है। अमरीका में जहाँ सट्टेबाज़ी और कॉरपोरेट अमल दख़ल अधिक है, वहाँ परिस्थिति और भी ज़्यादा ख़राब है। 1999 ई॰ में भारतीय किसानों को अमरीकी किसानों से 30 प्रतिशत अधिक गेंहू की क़ीमत मिली थी। जबकि गेंहू का उपभोग करनेवाला अमरीकी भारतीय उपभोक्ता के मुक़ाबले में चार गुना अधिक क़ीमत अदा कर रहा था। दुर्भाग्य से धीरे-धीरे यही हालत अब हमारे देश में भी पैदा हो रही है।[29]

फिर हमारी सरकार अन्तर्राष्ट्रीय दबाव और डब्लू टी ओ की शर्तों से मजबूर होकर निरन्तर खाद्य-वस्तुओं का आयात बढ़ा रही है। हमारे किसान विकसित देशों के किसानों से मुक़ाबला नहीं कर सकते। फिर उनमें से

बहुत-से विकसित देशों में किसानों को भारी सरकारी छूट (सब्सिडी) मिलती है। इन कारणों से भारतीय किसानों को भारी नुक़सान होता है।

यही कारण है कि जहाँ शहरी हिन्दुस्तान ने पिछले 18 सालों में ज़बरदस्त विकास किया है वहीं ग़रीब किसान की हालत में कोई सुधार नहीं आया है। 1994-2004 ई॰ के बीच, जबकि देश की प्रति व्यक्ति

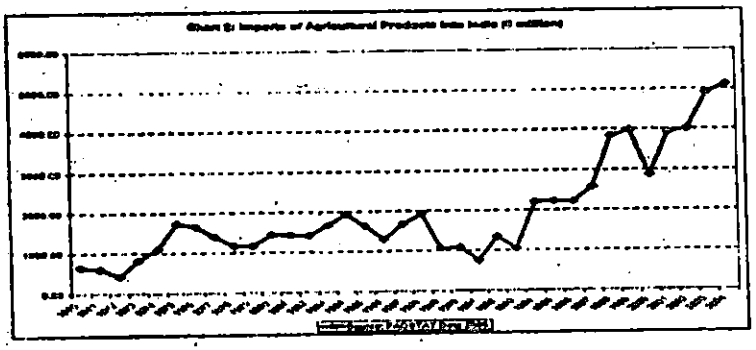

आय 4 प्रतिशत वार्षिक के औसत से बढ़ रही थी, खेती पर निर्भर आबादी की प्रति व्यक्ति आय ठहरी हुई थी, इसमें एक पैसे की भी बढ़ोतरी नहीं हो सकी।[30]

इसका नतीजा यह है कि एक तरफ़ देश 9 प्रतिशत वार्षिक की गति से विकास कर रहा था और सारी दुनिया में भारत के आर्थिक विकास की धूम मची हुई थी और दूसरी तरफ़ ठीक उसी ज़माने में हर साल 17500 किसान आत्महत्या कर रहे थे।[31]

2007 ई॰ तक लगभग दो लाख किसान आत्महत्या कर चुके थे। 'ज्ञात मानव-इतिहास' में ये आत्महत्याएँ अब तक की सबसे बड़ी लहर थी, जो हमारे देश के नवीन इतिहास के उज्ज्वलतम दौर में उन पॉलीसी बनानेवालों की नाक के नीचे चल रही थी जो 'नील गोड' के नशें में मद-मस्त थे!

आत्महत्याओं के अतिरिक्त दस वर्षों में हमारे देश से 8 बिलियन किसान ग़ायब हो गए। 1991 ई॰ की जनगणना में किसानों की संख्या 11.1 करोड़ थी जो 2001 ई॰ की जनगणना में 10.3 करोड़ रह गई। दूसरे शब्दों में यह कि 80 लाख किसानों ने खेती छोड़कर मेहनत-मज़दूरी शुरू कर दी है।[32]

शहरी ग़रीबों पर प्रभाव

मामला सिर्फ़ गाँवों तक सीमित नहीं है। शहरों में भी ग़रीब और पिछड़े लोगों की उपेक्षा की जा रही है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तबाही के कारण लोग शहरों का रुख़ कर रहे हैं। 1961 ई॰ से 1991 ई॰ के बीच शहरों की ओर पलायन करनेवाले लोगों की दर धीरे-धीरे कम हो रही थी। (इसलिए कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने की कोशिश की जा रही थी।) लेकिन 2001 ई॰ में यह गति फिर बढ़ गई।[33]

ग़रीब लोग रोज़गार की तलाश में शहर आते हैं तो अब नए भारत का शहर उनको सहारा देने के लिए तैयार नहीं। दुनिया की दूसरी सबसे ज़्यादा तेज़ी से विकासशील अर्थव्यवस्था में रोज़गार के अवसर केवल शिक्षित प्रोफ़ेशनल्स के लिए हैं। ग़रीब देहाती के लिए कोई अवसर नहीं है। यही नहीं, बल्कि शहरी ज़िन्दगी का बदला हुआ रूप एक ग़रीब देहाती को शहर में क़दम जमाने ही नहीं देता। शहरी ग़रीबी उन्मूलन की मन्त्री कुमारी शेलजा ख़ुद कहती हैं[34]-

> "The current model of urbanization has less space and resources for the urban poor. It is resource and capital intensive and facilities amenities to urban upper and elite classes in terms of large apartment complexes, shopping malls, multiplexes and parking lots. Capital intensity of urban growth creates divide between the rich and the poor raising prices of basic amenities and making these inaccessible to poor."

शहरी भारत में झुग्गी-झोंपड़ियों और स्लम्स (Slums) की संख्या बढ़ रही है। इनमें बुनियादी सुहूलतें बढ़ने के बजाए कम होती जा रही हैं।*1988 ई॰ में नल के साफ़ पानी की सुहूलत 72 प्रतिशत शहरी घरानों में थी जो 1998 ई॰ में घटकर मात्र 70 प्रतिशत घरों में रह गई। टॉयलेट (प्रसाधनों) की सुविधा में 1983 ई॰ से कोई प्रतिशत वृद्धि नहीं हो सकी है।[35]

संयुक्त राष्ट्र महासंघ की संस्था यू एन डी पी की रिपोर्ट के अनुसार भारत के शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित निम्नलिखित रहस्य विशेष रूप से प्रकट हुए हैं जो ध्यान देने योग्य हैं—

☆ उत्तरी भारत के शहरों में स्वास्थ्य एवं उपचार की सुविधाएँ बहुत कम हैं।

☆ शहरी क्षेत्रों में इलाज की भारी क़ीमतों की वजह से ग़रीब लोग इलाज नहीं करा पा रहे हैं।
☆ बड़े शहरों में ग़रीबों के लिए शिक्षा का ढाँचा बहुत कमज़ोर और बिलकुल अपर्याप्त है।
☆ शत-प्रतिशत शिक्षा का लक्ष्य शहरों में अब भी बहुत दूर है।
☆ एक मिलियन से ज़्यादा आबादी के बड़े शहरों में लड़कियों की शिक्षा के प्रबन्ध अपर्याप्त हैं।[36]

शहरों को ख़ूबसूरत बनाने के नाम पर ग़रीब फ़ेरीवाले निरन्तर शोषण का शिकार बन रहे हैं। फेरीवालों की तादाद शहरी क्षेत्रों में 2.5 प्रतिशत है और एक करोड़ लोगों का रोज़गार उनपर निर्भर है। लेकिन ये फेरीवाले निरन्तर नगर निगमों और पुलिस-अत्याचार के निशाने पर रहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने एक निवर्तमान फ़ैसले में इस पेशे को बुनियादी ज़रूरतों के अधिकार से जोड़ा है। लेकिन इसके बावजूद शोषण के सिलसिले में कोई अन्तर नहीं आया।[37]

विकास का साम्राज्यवादी मॉडल किस तरह ग़रीबों की मुसीबतों में वृद्धि कर रहा है, इसकी एक भयानक मिसाल खुदरा व्यापार (Retail Buisiness) में बड़ी कॉरपोरेट कम्पनियों का प्रवेश है। सरकार और शहर के धनी लोग शॉपिंग के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का तजरिबा चाहते हैं। इस इच्छा ने बड़े-बड़े शॉपिंग मॉलों को जन्म दिया। अब कपड़े ही नहीं बल्कि किराना, सब्ज़ी, गोश्त आदि भी बड़ी-बड़ी कम्पनियों के स्टोरों में बेचे जा रहे हैं। भारत में फुटकर का व्यापार 15 लाख करोड़ का है। लगभग पाँच करोड़ परिवार और 25 करोड़ व्यक्ति इसपर निर्भर हैं।[38]

बड़ी कम्पनियों के प्रवेश और अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों (जैसे वाल मार्ट भारती साम्यवाद) के चोर दरवाज़ों से प्रवेश ने इन करोड़ों लोगों की कमाई पर प्रश्न चिह्न लगाया है।

रिलायंस इंडस्ट्रीज़ चार सालों में इस सैक्टर में 25000 करोड़ रुपये के पूँजीनिवेश की योजना बना रही है। जिन क्षेत्रों में रिलायंस फ्रेश के स्टोर स्थापित हुए वहाँ ग़रीब व्यापारी बुरी तरह प्रभावित हुए। एक अध्ययन के अनुसार रिलायंस फ्रेश के क्षेत्रों में 90 प्रतिशत व्यापारी प्रभावित हुए और 66 प्रतिशत व्यापारियों को कुछ ही महीनों में अपनी दुकानें बन्द करनी पड़ीं।[39]

इन बड़ी कम्पनियों की यह आक्रामकता केवल फुटकर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अब घरों और दफ़्तरों की सफ़ाई, हमामों और टॉयलेटों की सफ़ाई, शेविंग आदि जैसे क्षेत्रों में भी (जो बरसों से ग़रीबों की रोज़ी-रोटी का सामान थे) बड़ी कम्पनियाँ प्रवेश कर रही हैं।

विकास से सम्बन्धित अत्याचार

इस एक दिशा के विकास का एक अफ़सोसनाक पहलू विकास से सम्बन्धित अत्याचार हैं। कुछ ख़ुशहाल पूँजीपतियों की सुविधा के लिए जनता पर तरह-तरह के अत्याचार किए जाते हैं। उद्योग-धन्धे स्थापित करने के लिए बस्तियाँ उजाड़ी जाती हैं, जंगल काटे जाते हैं और लोगों को बे-घर किया जाता है।

विशेषज्ञों का अन्दाज़ा है कि विभिन्न विकास की योजनाओं के लिए आज़ादी के बाद से अब तक 6 करोड़ लोगों को बे-घर किया गया। अर्थात उनके घर और ज़मीनों आदि को प्रोजैक्टों आदि के लिए छीन लिया गया। यह संख्या देश-विभाजन के बाद भारत-पाक के मुहाजिरों की कुल संख्या (1.5 करोड़) से चार गुना है। इनमें से केवल 20 प्रतिशत का पुनर्वास हो सका। शेष 80 प्रतिशत मज़लूमों और पीड़ितों को हालात के रहमो-करम पर छोड़ दिया गया।[40]

ये ग़रीब लोग जिनमें 40 प्रतिशत आदिवासी और 20 प्रतिशत दलित हैं, जब अपने माहौल से कट जाते हैं तो उनका सब कुछ लुट जाता है। ग़रीब इनसानों की ज़िन्दगी उनके अपने माहौल से बहुत गहराई के साथ जुड़ी होती है, जिसमें वे कई नस्लों से रह रहे हैं। ग़रीब आदिवासियों की गुज़र-बसर सम्बन्धित जंगल की विशेष जंगलीय पैदावार के ज़रीए से होती है। इसके अलावा न वे कोई पेशा जानते हैं, न किसी पेशे से जुड़ सकते हैं। जब वहाँ से काट दिए जाते हैं तो उनके पास कोई रोज़गार नहीं रहता। बची हुई ज़िन्दगी उन्हें बहुत ही बे-बसी की हालत में गुज़ारनी होती है।

चूँकि आदिवासियों के अधिकतर क्षेत्र विकास से सम्बन्धित ख़ज़ानों से मालामाल हैं इसलिए उन्हें बारबार यह मार झेलनी पड़ती है। हमारे देश के आदिवासियों की 25 प्रतिशत आबादी कम-से-कम एक बार ज़रूर बे-घर हो चुकी है। कुछ लोगों को तो अपनी ज़िन्दगी में कई-कई बार बे-घर होना पड़ता है। एक समीक्षक ने उत्तर-पूर्व के मीज़ो क़बीलों का उल्लेख किया है, जिन्हें 90 के दशक में तीन बार उनके घरों से उजाड़ा गया। पहली बार आइज़ोल एयरपोर्ट के निर्माण के लिए, दूसरी बार उस एयरपोर्ट को जानेवाले रोड के निर्माण के लिए और तीसरी बार उसी एयरपोर्ट के स्टाफ़ क्वार्टरों के निर्माण के लिए।[41]

जैसा कि बताया गया कि इन उजड़े हुए लोगों को बदले में जगहें भी उपलब्ध नहीं कराई जातीं। इन्हें सरकार की तय की हुई बाज़ार की क़ीमत की बुनियाद पर मुआवज़ा देना तय है। बाज़ार की बाक़ायदा

क़ीमत जो सरकार रजिस्ट्री रिकॉर्ड की बुनियाद पर तय करती है, वास्तविक क़ीमत से कम-से-कम चालीस प्रतिशत कम होती है। इसलिए कि हमारे देश में रजिस्ट्री के काग़ज़ों पर वास्तविक क़ीमत दर्शाई नहीं जाती।[42]

लेकिन यह 40 प्रतिशत कम क़ीमत भी बहुत कम ख़ुशक़िस्मतों को ही मिल पाती है। ग़रीब आदिवासियों के पास न सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देने के लिए रक़में होती हैं और न ही पहुँच, न ही ब्यूरोक्रेसी के पेचीदा तरीक़ों और काग़ज़ों में दिमाग़ लगाने की शैक्षणिक योग्यता। नतीजा यह होता है कि वे कुछ साल दफ़्तरों के चक्कर लगाकर और मायूस होकर बैठ जाते हैं।

यू॰ पी॰ ए॰ सरकार ने इन समस्याओं से निपटने के लिए 2004 ई॰ में राष्ट्रीय पुनर्वास नीति का एलान किया था। इस नीति पर विशेषज्ञों की ज़बरदस्त आलोचना को सामने रखते हुए पुनर्विचार किया गया और 2007 ई॰ में नई नीतियों का एलान किया गया। पुनर्विचार के बाद की नीति पर आधारित ज़मीन तहवील (संशोधित) क़ानून 2007 ई॰ और पुनर्वास क़ानून 2007 ई॰ के बिल संसद में विचाराधीन हैं। इन नीतियों और क़ानूनों में यद्यपि बहुत-सी महत्त्वपूर्ण माँगों को शामिल किया गया है लेकिन इनमें अब भी ऐसी बुनियादी कमियाँ मौजूद हैं जिनकी वजह से शंका है कि ये क़ानून विकास के नाम पर उल्लिखित अत्याचारों का रास्ता रोकने में नाकाम होंगे। इन कमियों और बेहतर क़ानूनों के सम्बन्ध में अपने प्रस्तावों का उल्लेख हम इस लेख के अन्त में करेंगे।

विशेष आर्थिक ज़ोंस

पूँजीवादी शोषण का एक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन विशेष ज़ोंस हैं। ग़रीब ग्रामीणों और आदिवासियों की ज़मीनें छीनकर वहाँ विशेष क्षेत्र आबाद किए जाते हैं और उन्हें विभिन्न व्यापारिक और औद्योगिक गतिविधियों के लिए पूँजीपतियों के हवाले कर दिया जाता है। जिस प्रकार प्रार्चीन समय में सल्तनतों के अन्दर छोटे-छोटे रजवाड़े होते थे, जहाँ महाराजों का पूर्ण अधिकार होता था, उसी प्रकार विशेष ज़ोंस में नए ज़माने के महाराजों का राज होता है। कई देशों के क़ानूनों से उन्हें मुक्त रखा जाता है। टैक्स की छूट हासिल होती है। उनकी अपनी सिक्योरिटी फ़ोर्सेज़ होती हैं। न उनके यहाँ नगर निगम के चुनाव होते हैं और न नागरिकों का क्षेत्रीय प्रबन्ध और व्यवस्था में कोई हिस्सा होता है। बस बड़ी कम्पनियों का राज होता है।

स्पेशल इकॉनोमिक्स ज़ोंस (SEZ), स्पेशल एक्सपोर्ट ज़ोंस (SExZ) और स्पेशल टूरिज़्म ज़ोन (STZ) आदि नामों से देश के बीस राज्यों में कई स्पेशल ज़ोंस शुरू किए गए हैं। कुल साढ़े सात सौ ज़ोंस आनेवाले कुछ सालों में स्थापित होने हैं। चीन आदि देशों के विपरीत हमारे देश में ये ज़ोंस उपजाऊ ज़मीनों पर आबाद किए जा रहे हैं। 2 लाख हैक्टेयर ज़मीन (गोवा के कुल क्षेत्र से कुछ कम) इसके लिए निर्धारित की गई है।[43]

इन ज़मीनों पर इससे पहले लगभग एक मिलियन टन अनाज की खेती होती थी। लगभग 10 लाख लोगों को इनकी वजह से उजड़ना पड़ा। ग़रीब परिवारों को कुल मिलाकर 212 करोड़ रुपये वार्षिक का नुक़सान इसकी वजह से झेलना पड़ता है।[44]

सारी दुनिया में ये विशेष ज़ोंस पर्यावरण को प्रदूषित करने, टेक्सों की चोरी और मज़दूरों के शोषण के लिए बदनाम हैं। इंटरनेशनल कन्फ़ेडरेशन ऑफ़ फ्री ट्रेड यूनियन्ज़ की रिपोर्ट में इस पर समीक्षा करते हुए कहा गया है कि "इन फ्री ज़ोंस में केवल कम्पनियों के मालिक फ्री होते हैं जो इसी तरह आज़ाद घूमते हैं जिस तरह एक मुर्ग़ी फ़ारम में लोमड़ी घूमती है।"[45]

इन विशेष ज़ोंस में होनेवाले व्यापार को आय कर (Income Tax) से पूरी छूट दी गई है। इसके अतिरिक्त सर्विस टैक्स और ट्रांसपोर्ट टैक्स आदि में भी भारी छूट दी गई है। मैनुफ़ैक्चरिंग में सीधे तौर पर विदेशी पूँजीनिवेश की पूरी आज़ादी है। प्रोविडेंट फ़ंड भी अनिवार्य नहीं है और कर्मचारियों की हड़ताल पर पाबन्दी है। पर्यावरण विभाग से भी किसी क्लयरेंस की आवश्यकता नहीं।[46]

महा-मुम्बई विशेष इकॉनोमिक ज़ोन जो रिलायंस इंडस्ट्री की ओर से निर्मित किया जा रहा है, अपने आप में एक मुकम्मल शहर है। इसका क्षेत्रफल लगभग चण्डीगढ़ के क्षेत्रफल के बराबर (100 वर्ग किलोमीटर) है। यहाँ कोई चयनित निगम नहीं होगा। यहाँ काम करनेवाले कर्मचारियों के लिए हड़ताल करना अवैध होगा। मज़दूरों से सम्बन्धित और भी कई क़ानूनों को यहाँ लागू नहीं किया जाएगा। डेवेलपर्स को यहाँ रहनेवाले लोगों पर टैक्स लगाने का भी अधिकार होगा। अन्दरूनी सिक्योरिटी की ज़िम्मेदारी डेवेलपर्स की होगी।[47]

इस तरह एक ख़ुदमुख़्तार शासन के अन्दर छोटे और अर्द्ध-स्वतन्त्र पूँजीवादी द्वीप अस्तित्त्व में आ रहे हैं। ये स्पेशल ज़ोंस कई पहलुओं से कुछ चुने हुए पूँजीपतियों की तरक़्क़ी के लिए लाखों ग़रीबों पर अत्याचार कर रहे हैं। इनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

(1) इनके नतीजे में उपजाऊ ज़मीन खेती के बजाए उद्योग और व्यापारिक कामों के लिए इस्तेमाल में आ रही है। इससे खेती की पैदावार प्रभावित होती है और ग़ल्लों की क़ीमतों में बढ़ोतरी होने लगती है। इस बढ़ोतरी की मार वास्तव में ग़रीब आदमी को ही झेलनी पड़ती है।

(2) यहाँ रहनेवाले ग़रीब किसानों, आदिवासियों और ग्रामीणों के घर और गाँव, उजड़ रहे हैं और उनसे उनके रोज़गार छीने जा रहे हैं। अधिकतर उन्हें बदले में उचित रोज़गार और आवास की सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध कराने की सम्भावना बहुत कम ही होती है।

(3) यहाँ काम करनेवाले कर्मचारी उन क़ानूनी सुरक्षाओं से वंचित हैं जो अन्य कर्मचारी को प्राप्त हैं। पूँजीपतियों को उनके शोषण के अवसर प्राप्त हैं।

(4) यहाँ रहनेवालों को उनके लोकतान्त्रिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। नगर निगम के प्रबन्ध और व्यवस्था में नागरिकों को शामिल नहीं किया गया है।

(5) देश के अन्दर किसी भी क्षेत्र में इतनी ख़ुदमुख़्तारी कि फ़ौजदारी क़ानूनों के अतिरिक्त शेष सभी क़ानून अलोकतान्त्रिक रूप से किसी पूँजीपति के बनाए हुए हों और एक पूँजीपति या कम्पनी टैक्स लगाने, निगम सम्बन्धित व्यवस्था करने, सिक्योरिटी आदि के तमाम काम अंजाम देने लगे तो यह देश की सुरक्षा और उसके लोकतान्त्रिक ढाँचे के लिए ठीक नहीं है।

पर्यावरण-संकट

विकास के इस मॉडल का एक बड़ा नुक़सान पर्यावरणीय संकट है। पूँजीपतियों की कभी न ख़त्म होनेवाली हवस (लालसा) और इसके लिए अन्धाधुन्ध उद्योगों के लगाए जाने के कारण यह सूरते-हाल पैदा हो गई है कि आज न पानी सुरक्षित है, न हवा। इसकी वजह से मौसम का परिवर्तन, ओज़ोन की परत में छेद, वायु एवं जल प्रदूषण, जैविक नवीनीकरण की हानि, प्राकृतिक संसाधन और ऊर्जा का संकट आदि जैसी संगीन समस्याएँ पैदा हो रही हैं। ये समस्याएँ इतनी संगीन हैं कि इनके नतीजे में आदम की सन्तान के शेष रहने को ही ख़तरा होने लगा है।

इस्लाम का दृष्टिकोण

इस्लाम विकास का पक्षधर है लेकिन कुछ शर्तों के साथ। जिस तरह साम्यवाद का नारा बराबरी और पूँजीवाद का नारा आज़ादी और उन्नति है, उसी तरह इस्लाम का नारा न्याय और इनसाफ़ है। न्याय में आज़ादी, बराबरी और उन्नति भी शामिल है। लेकिन ये मान्यताएँ शर्तों और कुछ अपेक्षाओं के अन्तर्गत हैं। पूँजीवादी व्यवस्था पूँजी और आर्थिक विकास को आगे और इनसान को पीछे रखती है। जबकि इस्लाम के निकट इनसान असल है और पूँजी और विकास मात्र इनसान की सेवा के लिए हैं। अतः विकास और उन्नति से पहले इनसानियत और उसके तक़ाज़ों को प्राथमिकता दी गई है।

क़ुरआन कहता है कि इस कायनात (ब्रह्माण्ड) का असल मालिक ख़ुदा है जो अपनी ज़ात में एक है और उसका कोई साझी नहीं। कायनात की हर चीज़ यहाँ तक कि इनसान का जिस्म और उसका माल भी वास्तव में अल्लाह ही की मिल्कियत है। क़ुरआन में है—

> "कहो कि ज़मीन और जो कुछ इसमें है (सब) किसकी मिल्कियत है, अगर तुम (कुछ जानते हो?) वे फ़ौरन बोल उठेंगे कि (सब कुछ) अल्लाह का है। (तो) आप फ़रमा दीजिए : फिर तुम नसीहत क़बूल क्यों नहीं करते?" (23:84,85)

इनसान ज़मीन पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) है और ख़लीफ़ा की हैसियत से उसे अल्लाह के दिए हुए संसाधनों का उसकी इच्छानुसार न्याय और सन्तुलन बनाए रखते हुए इस्तेमाल करना है। क़ुरआन में है—

> "और वही है जिसने तुमको ज़मीन में प्रतिनिधि बनाया और तुममें से कुछ को कुछ पर दर्जों में उच्च किया ताकि वे उन (चीज़ों) में तुम्हें आज़माए जो उसने तुम्हें (अमानत के तौर पर) दे रखी हैं। निस्सन्देह आपका रब (अज़ाब के पात्र लोगों को) जल्द सज़ा देनेवाला है और निस्सन्देह वह (मग़फ़िरत चाहनेवालों को) बड़ा बख़्शनेवाला और बेहद रहम करनेवाला है।" (6:165)

इन अवधारणाओं की बुनियाद पर बिलकुल भिन्न विकास का एक मॉडल बनता है, जो न्याय, ग़रीब की हमदर्दी, इनसान-दोस्ती, सादगी,

कल्याण और उन्नति आदि से जाना जाता है। इस मॉडल में मजबूर, ग़रीब और मोहताज अपनी कमज़ोरी की वजह से हमेशा दबा-कुचला नहीं रहता बल्कि उसके ख़ुशहाल भाई उसे भी हाथ पकड़कर अपने साथ ऊँचा ले जाते हैं और समाज और राज्य की सारी ताक़तें और संसाधन उसकी देखभाल और उसकी समस्याओं के हल के लिए मौजूद और तैयार रहते हैं। इस इनसान-दोस्त विकास के मॉडल की कुछ विशेषताएँ नीचे बयान की जा रही हैं–

(1) आर्थिक विकास सरकार की ज़िम्मेदारियों में शामिल है

शहरों का आबाद करना, इन्फ्रास्ट्रक्चर उपलब्ध कराना, शहरों की रौनक़ में बढ़ोतरी करना, उद्योग-धन्धों, व्यापारों और टेक्नोलॉजी को बढ़ावा देना आदि काम जो नवीन परिभाषा में विकास कार्य कहलाते हैं, इस्लाम को भी वांछित (मतलूब) है। क़ुरआन में है–

> "और (हम ने क़ौमे-) समूद की तरफ़ उनके भाई 'सालेह' को (भेजा), उन्होंने कहा : ऐ मेरी क़ौम! अल्लाह की इबादत करो, तुम्हारे लिए उसके सिवा कोई माबूद नहीं, उसी ने तुम्हें ज़मीन से पैदा किया और उसमें तुम्हें आबाद किया। तो तुम उससे माफ़ी माँगो फिर उससे तौबा करो। निस्सन्देह मेरा रब क़रीब है, दुआएँ क़बूल करनेवाला है।" (11:61)

मानो ज़मीन को आबाद करना और उसमें इनसानों के लिए सुविधाएँ जुटाना अल्लाह की इच्छा को पूर्ण करना ही है। ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)☆ ने ख़ुदा का यह कथन बयान किया–

> "(उन्होंने) मेरे (ख़ुदा के) देशों को आबाद किया तो उसमें मेरे बन्दों ने ज़िन्दगी बसर की।" (हदीस)

डॉ0 नजातुल्लाह सिद्दीक़ी ने मावर्दी का कथन उद्धृत किया है। वे कहते हैं कि शासक की ज़िम्मेदारियों में यह बात भी शामिल है कि वह–

> "उम्मत के शासक वर्ग पर सात ज़िम्मेदारियाँ होती हैं।..... उनमें से तीसरी ज़िम्मेदारी यह है कि (अपनी सत्ता) देश के तमाम हितों की सुरक्षा और उसकी सड़कों और दूसरे परिवहन के साधनों को बेहतर बनाकर उन देशों को आबाद और ख़ुशहाल रखे।" (देखें इस्लाम का आर्थिक दृष्टिकोण, नजातुल्लाह सिद्दीक़ी, मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स, दिल्ली- 25, 2004 पृ 449)

☆ सल्ल॰ : इसका पूर्ण रूप है 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' अर्थात हज़रत मुहम्मद पर अल्लाह की कृपा और दया हो!

(2) नागरिकों का भरण-पोषण सरकार की ज़िम्मेदारी है लेकिन उपर्युक्त विकास से पहले सरकार को जिस चीज़ की चिन्ता करनी है वह तमाम नागरिकों के भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी है। वह लोगों के भरण-पोषण की उपेक्षा करके विकास के कथित मॉडल के पीछे अन्धाधुन्ध नहीं दौड़ सकती। हर नागरिक को खाना, कपड़ा, मकान और इलाज की बुनियादी सुविधाएँ जुटाना सरकार की ज़िम्मेदारी है। दूसरे शब्दों में नवीन सुधार में ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों का अधिकार (Right to Livelihood) इस्लाम के अनुसार बुनियादी मानवाधिकारों में शामिल है। इस अधिकार पर अमल करना सरकार की क़ानूनी ज़िम्मेदारी है। सरकार के लिए ज़रूरी है कि वह ऐसी नीतियाँ बनाए कि देश में कोई व्यक्ति उन बुनियादी सुविधाओं से वंचित न रहे, और अगर नीतियों के बावजूद कुछ लोग वंचित रह जाते हैं तो राष्ट्रीय कोष से उनके भरण-पोषण का प्रबन्ध करे।

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने शासकों की यह ज़िम्मेदारी निश्चित की है कि वे लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हर सम्भव प्रयास करें—

> "जिसे अल्लाह ने मुसलमानों के कामों का निगराँ (संरक्षक) बनाया है और वह उनकी ज़रूरतों और उनकी भूख-प्यास से बे-परवा होकर बैठ रहा, तो अल्लाह भी उसकी ज़रूरतों और भूख-प्यास से बे-नियाज़ (निस्पृह) हो जाएगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

देश के शासक की हैसियत से पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने देश के सभी बे-सहारा लोगों की ज़िम्मेदारी ली थी—

> "जिसका कोई सरपरस्त (संरक्षक) न हो उसका सरपरस्त अल्लाह और उसका रसूल है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)
>
> "जिसका कोई वली (संरक्षक) न हो उसका वली सरकार होगी।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिर्मिज़ी)

यही नहीं बल्कि क़र्ज़दारों के क़र्ज़ को अदा करने की ज़िम्मेदारी भी इस्लामी हुकूमत ने स्वयं ले रखी थी—

> "मैं मुसलमानों की जानों से भी ज़्यादा उनसे क़रीब हूँ, जो मुसलमान क़र्ज़ छोड़कर मरे उसके क़र्ज़ की अदायगी मेरे ज़िम्मे होगी और जो माल छोड़े वह उसके वारिसों के लिए होगा।" (हदीस : बुख़ारी)

मरनेवालों के बे-सहारा बच्चों का भरण-पोषण सरकार के ज़िम्मे था—

"जो माल छोड़ जाए तो वह माल उसके घरवालों के लिए है और जो (किसी को) बे सहारा छोड़ जाए तो उसकी ज़िम्मेदारी मेरी होगी।" (हदीसः तिर्मिज़ी)

ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि)☆ कहा करते थे—

"यदि फ़रात नदी के किनारे पर कोई ऊँट बे-सहारा मर जाए तो मुझे डर है कि अल्लाह मुझसे उसके बारे में पूछेगा।"

(तबक़ात इब्ने-साद, अल-फ़ारूक़, अल्लामा शिबली नोमानी के हवाले से)

शाम (सीरिया) की यात्रा में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) को रास्ते में कुछ ईसाई मिले जो जज़ाम (कोढ़) में गिरफ़्तार थे। आप (सल्ल॰) ने उनकी मजबूरी को देखते हुए उनके लिए प्रतिदिन के हिसाब से वज़ीफ़ा जारी करने का हुक्म दे दिया। (इस्लाम का आर्थिक दृष्टिकोण, नजातुल्लाह सिद्दीक़ी, मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ॰ 449)

(3) ज़रूरतन्दों के भरण-पोषण के लिए धनी लोगों के माल में से ग़रीबों का हिस्सा वुसूल किया जाएगा।

क़ुरआन मजीद कहता है कि धनी लोगों के माल में ग़रीबों का भी हिस्सा है। क़ुरआन में है—

"और उनके मालों में माँगनेवालों और महरूमों (वंचित रह गए लोगों) का भी हक़ है।" (51:19)

इस हिस्से की वुसूली के लिए इस्लाम प्रोत्साहन, ताकीद और क़ानूनी बल हर तरह के तरीक़े अपनाता है। जहाँ तक प्रोत्साहन का सम्बन्ध है तो क़ुरआन चाहता है कि धनी लोग अपनी ज़रूरतों से बचा हुआ सारा माल ग़रीबों की भलाई और उनके कल्याण के कार्यों में लगाएँ। क़ुरआन कहता है—

"और आपसे (मुहम्मद सल्ल॰ से) यह भी पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें? कह दीजिए : जो ज़रूरत से अधिक है (ख़र्च करो)।" (2:219)

एक हदीसे-क़ुदसी में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने ख़ुदा का यह कथन बयान किया है—

"माल मेरा है और ग़रीब लोग मेरा कुंबा हैं। जिसने मेरा माल

☆ रज़ि॰ : इसका पूर्ण रूप है 'रज़ियल्लाहु अन्हु' अर्थात् उनसे अल्लाह ख़ुश हो!

मेरे कुंबे पर ख़र्च करने में कंजूसी की उसे मैं ज़रूर जहन्नम में दाख़िल करूँगा और उसकी मुझे कोई परवाह नहीं होगी।"

(हदीस : बुख़ारी)

एक सहाबी ने कहा कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया कि

"जिस व्यक्ति के पास सवारी और सामान ज़रूरत से अधिक हो वह उस व्यक्ति को दे दे जिसके पास न हो, और जिसके पास खाने-पीने की चीज़ें अधिक हों वह उसको दे दे जिसके पास नहीं है। इस तरह आप (सल्ल॰) ने माल के विभिन्न प्रकारों का इस तरह ज़िक्र किया कि हम समझने लगे कि जैसे हमारे बढ़े हुए माल में हमारा कोई हक़ ही नहीं।" (हदीस)

क़ानूनी स्तर पर तो निश्चित ज़कात धनी लोगों के माल में निर्धारित कर दी गई है। यदि ज़कात की रक़म आम लोगों के भरण-पोषण के लिए अपर्याप्त हो तो ज़कात के अतिरिक्त ज़रूरत के अनुसार धनी लोगों पर तदधिक टैक्स लगाए जाने चाहिएँ। इब्ने-हज़म कहते हैं कि लोगों के भरण-पोषण के लिए यदि ज़कात और फ़ै से प्राप्त आय अपर्याप्त हो तो मालदार लोगों पर तदधिक टैक्स लगाए जाएँगे—

"हर देश के मालदारों पर अनिवार्य है कि अपने ग़रीब लोगों का भरण-पोषण करें। यदि ज़कात की आय और सारे मुसलमानों की फ़ै से प्राप्त आय इसके लिए अपर्याप्त हो तो शासक उनको ऐसा करने पर मजबूर करेगा। उन (ग़रीबों) के लिए इतने माल का प्रबन्ध किया जाएगा जिससे कि वे ज़रूरत के अनुसार भोजन प्राप्त कर सकें और इस तरह जाड़े और गर्मी के कपड़े, रहने के लिए मकान, जो उन्हें बारिश, गर्मी, धूप और रास्ता चलनेवालों की नज़रों से सुरक्षित रख सके।"

(इब्ने-हज़म : अल-महली, इस्लाम का आर्थिक दृष्टिकोण के हवाले से)

यही नहीं बल्कि सरकार ग़रीबों के भरण-पोषण के लिए धनी लोगों की सारी बढ़ी हुई आय की माँग कर सकती है। हज़रत उमर (रज़ि॰) का कथन है—

"अगर मुझे लोगों की ज़रूरत पूरी करने के लिए काफ़ी माल न मिले तो मैं हर घरवालों के साथ उनकी संख्या के बराबर दूसरे व्यक्तियों को कर दूँ और वे उनकी आधी ख़ूराक अपने

हिस्से में ले लें। क्योंकि आधा पेट खाने से आदमी मर नहीं जाता।" (तबक़ात इब्ने-साद)

(4) बढ़ी हुई दौलत को कम करना भी सरकार की ज़िम्मेदारी है।

अल्लाह ने क़ुरआन में कहा है—

" जो कुछ भी अल्लाह बस्तियों के लोगों से अपने रसूल की ओर पलटा दे वह अल्लाह, उसके रसूल और रसूल के क़रीबी लोगों तथा यतीमों, मिसकीनों और मुसाफ़िरों के लिए ख़ास है ताकि ऐसा न हो कि पूँजी तुम्हारे धनी लोगों ही के बीच चक्कर लगाती रह जाए।" (59:7)

दूसरे शब्दों में आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि माल धनी लोगों के बीच ही न घूमता रहे बल्कि धनी लोगों से ग़रीबों की तरफ़ जाए। इस्लामी क़ानून ने इसके लिए ब्याज को हराम और ज़कात को अनिवार्य किया और विरासत जैसे तरीक़े अपनाए। सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि इन तरीक़ों के अलावा वह टैक्सों का प्रबन्ध, ख़र्च और छूटों का प्रबन्ध करे और सामान्य विकास-नीतियों को इस प्रकार बनाए कि माल धनी लोगों से ग़रीबों की तरफ़ जाए और सम्भव सीमा तक संसाधनों और दौलत का समान वितरण हो। समाजवाद की तरह बराबरी की अप्राकृतिक अवधारणा इस्लाम नहीं रखता लेकिन यह ज़रूर चाहता है कि पॉलिसियों पर अमल के द्वारा सम्भव सीमा तक असमानता को कम किया जाए।

(5) ज़िन्दगी की ज़रूरतों की उपलब्धता ऐशो-आराम पर प्राथमिकता रखता है।

इस्लामी क़ानून के विशेषज्ञों ने हितों के बीच प्राथमिकता और क्रम का जो शानदार निज़ाम बनाया है उसकी मदद से इस्लाम की विकास की प्राथमिकताओं को आसानी से निश्चित किया जा सकता है।

ये विशेषज्ञ हितों को तीन भागों में विभाजित करते हैं— ज़रूरतें, इच्छाएँ और अच्छी पसन्द। ज़रूरतें वे हित हैं जिन पर लोगों के दीन (धर्म), जान, माल, बुद्धि और नस्ल (और कुछ के निकट इज़्ज़त और आबरू) का शेष रहना निर्भर है। ये सबसे प्राथमिक हित हैं। इसके बाद इच्छाओं का नम्बर आता है। ये वे हित हैं जिनसे ज़िन्दगी आसान होती है और मुश्किलें दूर होती हैं। इसके बाद अच्छी पसन्द का नम्बर आता है। पसन्द अच्छी अभिरुचियों और अच्छे स्वभाव की अपेक्षाएँ होती हैं

और इनसे ज़िन्दगी में सौन्दर्य और अच्छा ढंग पैदा होता है। यदि इच्छाओं और पसन्द में टकराव हो तो क्रम के आधार पर इच्छा के हितों को प्राथमिकता दी जाएगी। उदाहरण के लिए पाकी और सफ़ाई पसन्द हित है लेकिन यदि नहाने से जान को ख़तरा हो (ज़रूरी हित) या ज़्यादा तकलीफ़ की आशंका हो (इच्छा सम्बन्धी हित) तो स्नान (ग़ुस्ल) न करने का आदेश है।

इस उसूल की बुनियाद पर विकास नीति में शहरों की सुन्दरता और पार्कों और मनोरंजन स्थलों की स्थापना पसन्द सम्बन्धी हित कहलाएगा। सड़कों के निर्माण आदि इच्छा सम्बन्धी। जबकि आधे से अधिक भूखी आबादी का पेट भरना, मरते हुए बच्चों और ख़ून की कमी की शिकार औरतों के इलाज की उचित सुविधाएँ जुटाना आदि ज़रूरी हित होंगे जिन्हें शेष हितों पर प्राथमिकता होगी। इस्लामी विकास नीति हितों के इसी क्रम की रौशनी में बनेगी।

इसके अतिरिक्त इस्लामी विधान के निम्नलिखित बिन्दु भी इस्लाम की विकास-नीति को समझने में मदद करते हैं–

(i) आम लोगों पर सरकार का हक़ उनके कल्याण के लिए किए जानेवाले कामों से मिलता है।

इस सिद्धान्त की अपेक्षा यह है कि ख़र्च निश्चित करने की असल कसौटी आम लोगों का कल्याण होनी चाहिए।

(ii) बिगाड़ ख़त्म करने को लाभ प्राप्ति पर प्राथमिकता प्राप्त है।

अर्थ यह है कि लोगों को लाभ पहुँचाने और आराम और सुविधाएँ जुटाने का मरहला बाद में आएगा पहले मुश्किलों और बिगाड़ को दूर करने की चिन्ता की जाएगी।

(iii) आम नुक़सान के ख़ातिमे के लिए ख़ास नुक़सान को बरदाश्त किया जाएगा।

यानी अगर दो बिगाड़ों और ख़राबियों में टकराव हो तो यह देखा जाएगा कि किस बिगाड़ या ख़राबी से बहुसंख्या प्रभावित हो रही है। यानी आम लोगों की बहुसंख्या के लाभ को कुछ लोगों के लाभ पर प्राथमिकता प्राप्त होगी। यह नहीं होगा कि कुछ पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने के लिए आम लोगों की बड़ी संख्या को मुश्किलों में झोंक दिया जाए।

(6) ऐश-पसन्दी इस्लाम को पसन्द नहीं है।

अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"सादा रहन-सहन अपनाना ईमान की ख़ूबियों में से है।"

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया–

"दुनिया का ऐशो-आराम मेरे लिए नहीं है। मैं एक मुसाफ़िर की तरह हूँ, जो आराम के लिए थोड़ी देर पेड़ के साए में रुकता है फिर चल पड़ता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) का कथन है–

"जब तुम किसी ऐसे आदमी को देखो जिसे माल और सुन्दरता के मामले में तुमसे अधिक नवाज़ा गया हो तो उन लोगों को देखो जिन्हें यह सब तुमसे कम दिया गया है।" (हदीस : मुस्लिम)

मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह भी कहा–

"एक बिस्तर मर्द के लिए, एक पत्नी के लिए और एक मेहमान के लिए और चौथा शैतान के लिए होता है।"

(हदीस : बुख़री)

कुछ प्रकार के ऐशो-आराम और भोग-विलास जैसे शराब, मर्दों के लिए सोना (Gold) और रेशम आदि को हराम किया गया। हलाल ऐशो-आराम में भी एहतियात और मध्यमार्ग अपनाने की शिक्षा दी गई।

(7) जिन आर्थिक क्षेत्रों पर आम लोगों की बहुसंख्या निर्भर है उनका विकास सरकार की ज़िम्मेदारी है।

अल्लामा शिबली नोमानी की किताब अल-फ़ारूक़ से हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) की कुछ नीतियों का विवरण हम नीचे बयान कर रहे हैं। इनसे इस्लाम के विकास-सम्बन्धी पक्ष का स्पष्टीकरण होगा।

(i) हज़रत उमर (रज़ि॰) ने खेती के विकास के लिए पूरे देश में एलान करा दिया था कि बेकार पड़ी ज़मीनों को जो आबाद करेगा वह उसकी हो जाएगी।

(ii) युद्ध के बाद एलान करते थे कि जो लोग अपनी बस्तियाँ छोड़कर गए हैं वे वापस आ जाएँ और अपनी ज़मीन-जायदाद ले लें और फ़ौज के गुज़र से जो खेती, फ़सल या जायदाद को नुक़सान हुआ हो तो उसका बदला (मुआवज़ा) ले लें।

(iii) खेती के विकास के लिए तालाब बनाने और नहरें खोदने के लिए

एक बड़ा सिंचाई विभाग बनाया जिसमें केवल मिस्र में डेढ़ लाख लोग काम करते थे।

(iv) शहरों को बहुत अधिक बढ़ने से रोकने के लिए आपने नए शहर बसरा, कूफ़ा, मूसिल, फ़िस्तात जैसे शहर आबाद कराए और उन्हें विभिन्न गतिविधियों का केन्द्र बनाया।

(v) ग़ुलामों सहित तमाम फ़क़ीरों और मिसकीनों का प्रतिदिन का वज़ीफ़ा (वृत्ति) निश्चित किया।

इमाम अबू-यूसुफ़ और अहमद-बिन-अबी रबीअ जैसे विद्वानों ने उस समय के इस्लामी शासकों को कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए थे। डॉ॰ नजातुल्लाह सिद्दीक़ी साहब ने उन निर्देशों का अपनी एक किताब में उल्लेख किया है। उन निर्देशों से विकास की सारी वार्ता पर इस्लाम का पक्ष बहुत स्पष्ट होकर सामने आता है।

"हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह॰) अपने गवर्नरों को ताकीद करते थे कि बंजर ज़मीनों को खेती करने योग्य बनाने के उपाय अपनाएँ। उन्होंने ईराक़ के गवर्नर को यह भी लिखा था कि कोष के बढ़े हुए माल में से किसानों को खेती करने के लिए (ब्याज मुक्त) क़र्ज़ दिए जाएँ।"

इमाम अबू-यूसुफ़ का हारून रशीद को मशविरा—

"..... आप उन नहरों की खुदाई का आदेश दे दीजिए और उसके सारे ख़र्च को राजकोष पर डाल दीजिए। उन ख़र्चों का भार उस क्षेत्र के नागरिकों पर न डालिए। उन लोगों का आबाद और ख़ुशहाल रहना उनके उजड़ जाने तथा मुफ़लिस होकर और तंग आकर ख़िराज देने से बेहतर है। ख़िराज देनेवालों की हर उस माँग को पूरा करना चाहिए जिससे उनके हितों की पूर्ति होती नज़र आए। लेकिन शर्त यह है कि इस योजना पर अमल करने से आसपास के दूसरों गाँवों और क़स्बों को नुक़सान पहुँचने की आशंका न हो। अगर उनके प्रस्ताव पर अमल करने से दूसरों की पैदावार कम होने और ख़िराज से प्राप्त आय में कमी होने का अन्देशा हो तो उसको मंज़ूर नहीं करना चाहिए।"

"नागरिकों की बहुसंख्या को अपनी उन बड़ी नहरों की खुदाई और सफ़ाई की ज़रूरत पेश आए जो दजला और फ़रात से

निकाली गई हैं तो आप उनकी ख़ुदाई और सफ़ाई करवा दिया कीजिए और उसके ख़र्चों का भार बैतुलमाल और ख़िराज देनेवाले दोनों पर डालिए, लेकिन सारा भार ख़िराज देनेवालों पर डाल देना ठीक नहीं होगा।....."

इब्ने-अबी रबी का आदेश ख़लीफ़ा मोअ़तसिम-बिल्लाह को—
"इमाम (शासक) के लिए ज़रूरी है कि अपने देशों की ख़ुशहाली, नागरिकों के लिए चीज़ों की क़ीमतों और उनकी खाने-पीने की ज़रूरत की चीज़ों के हालात पर निगाह रखे और उसके निकट सबसे अधिक महत्त्वता इस बात को प्राप्त हो कि जनता की भलाई में बढ़ोतरी हो और सबको उसकी निधि (करम) से लाभ पहुँचे।"

"न्याय के कामों में से एक यह है कि देशों की ख़ुशहाली का प्रबन्ध किया जाए। दो तरह के क्षेत्र हैं : कृषि क्षेत्र और बड़ी शहरी आबादियाँ। ख़ुदा के बन्दों के हितों और उनकी ज़िन्दगी का बाक़ी रहना कृषि क्षेत्रों से सम्बद्ध है और उन क्षेत्रों के सिलसिले में शासक पर तीन कर्त्तव्य अनिवार्य हैं।"

"पानी के कुँओं और तालाबों आदि को ठीक हालत में रखा जाए ताकि दूर और पास के लोग उनसे लाभ उठा सकें। किसानों को ज़ुल्म और मुसीबत से सुरक्षित रखा जाए ताकि वे खेती को छोड़कर दूसरे कामों में न उलझ जाएँ और उनसे जो कर वुसूल किए जाएँ वे इस्लामी विधान और उसूल व इनसाफ़ के अनुसार किए जाएँ ताकि उनपर कोई ज़ुल्म और ज़्यादती न हो। अगर किसी मामले में उनके अधिकारों का हनन किया गया या उनके साथ ज़ुल्म व ज़बरदस्ती का तरीक़ा अपनाया गया तो ख़ुशहाली के बजाए इसके विपरीत परिस्थिति पैदा हो जाएगी।"
(निजातुल्लाह सिद्दीक़ी, अहमद बिन-अबी रबी के हवाले से)

राज्य के कर्त्तव्य

☆ संविधान में संशोधन के ज़रीए से बुनियादी ज़रूरतों के अधिकार (Right to Livelihood) को बुनियादी मानवाधिकार घोषित किया जाए और सभी ज़रूरतमन्द नागरिकों के लिए रोटी, कपड़ा, मकान और इलाज उपलब्ध कराने को सरकार की ज़िम्मेदारी घोषित किया जाए।

☆ सरकार का विकास-सम्बन्धी और समाजी ख़र्च बढ़ाया जाए। शिक्षा पर 6 प्रतिशत जी डी पी और स्वास्थ्य पर 3 प्रतिशत जी डी पी

के वादे शीघ्रता-शीघ्र पूरे किए जाएँ। प्रस्तावित शिक्षा के अधिकार के क़ानून में संशोधन करके केन्द्रीय और राज्य सरकारों को इस ख़र्च का पाबन्द बनाया जाए और इसी तरह का क़ानून स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भी बनाया जाए।

☆ खेती की अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए एम एस स्वामी नाथन कमीशन की रिपोर्ट शीघ्रता-शीघ्र लागू की जाए।

☆ ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण अर्थव्यवस्था और उससे सम्बन्धित सेक्टरों के विकास के लिए उचित राशि निश्चित की जाए।

☆ योजना में मुस्लिम कम्पोनेंट योजना शामिल की जाए।

☆ भलाई और कल्याण के कामों को पूर्ण करने के लिए आय को बढ़ाया जाए और ज़रूरत के अनुसार सर्वाधिक धनवान लोगों से टैक्स की दरें बढ़ाई जाएँ। एजूकेशन टैक्स के ढंग पर विशेष कर ग़रीबी के ख़ातिमे के लिए लगाया जाए।

☆ बड़ी कम्पनियों और कॉरपोरेट संस्थाओं तथा मल्टी नेशनल कम्पनियों को जनता के विकास के कामों में साझीदार बनाया जाए। कॉरपोरेट सोशल रेस्पाँसबिलिटी को क़ानूनी तौर पर निश्चित किया जाए और कम्पनियों को उनके टर्न ओवर के अनुपात से कल्याण के लक्ष्य (Target) दिए जाएँ, जिनकी ऑडिट का स्थाई प्रबन्ध हो और जिनको पूर्ण करना उनकी क़ानूनी ज़िम्मेदारी हो।

☆ सेज़ (SEZ) ऐक्ट में संशोधन किया जाए। सेज़ केवल बंजर ज़मीनों पर बनाए जाएँ। उनपर सरकार का कंट्रोल हो। लेबर लाज़ अर्थात श्रम-क़ानूनों में नर्मी न लाई जाए।

☆ पुनर्वास बिल में संशोधन किया जाए। लोगों को उनकी जगहों से हटाने के लिए कठिन शर्तें रखी जाएँ। ज़रूरतों के निर्धारण के लिए तटस्थ एवं निष्पक्ष व्यवस्था बनाई जाए। समय पर पुनर्वास को सुनिश्चित करना सम्बन्धित ज़िलाधिकारी की ज़िम्मेदारी घोषित की जाए। ज़मीनों के उचित मूल्यों की अदायगी को क़ानूनी तौर पर आवश्यक बनाया जाए।

☆☆☆

Sources

(1) Hla Myint and Anne O. Krueger (2009); "Economic development," Encyclopaedia Britanica.

(2) Ricardo Conteras; " How the Concept of Development Got Started"; University of IOWA, Center for International Finance and Dev. 2007.

(3) John Williamson; "What Washington Means by Policy Reform"; Peterson Institute for International Economics Ch.2; 2002

(4) विस्तृत विवरण के लिए देखें बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज की वेब साइट पर सेंसेक्स की व्याख्या
ttp://www.bseindia.com/about/abindices/bse30.asp

(5) UNDP, "Concept and Measurement of human development -HDR 1990; UNDP, 1990

(6) Luisa Kroll, "The World's Billionaires" FORBES, 03-05-08

(7) UNDP; Human Development Report 2009, UNDP

(8) Mani Shankar Aiyer, "Outlays have had no relationship with outcomes", Business Standard Nov. 17, 2009

(9) PTI, "Poor Monsoon to...", Business Standard Aug, 18-09

(10) Michele Gragnolati et. al. " India Under nourished Children, a Call for Action", The World Bank, August 2005.

(11) Los Angeles Times, 6 September 2007

(12) Nirmala Nagaraj, "India Ranks...", Times of India; 11th August 2009

(13) http://www.ibef.org/industry/healthcare.aspx

(14) देखिए भारत सरकार के बजट की दस्तावेज़ात
http://indiabudget.nic.in/

(15) http://www.nationamaster.com/graph/edu_spe-education-spending-of-gdp

(16) Planning Commission, Govt. of India; "Eleventh Five Year Plan 2007-12", Vol. 1, Table 12.1, p.255

(17) Planning Commission, Govt. of India; "Eleventh Five Year Plan 2007-12", Vol. 1, Table 12.5, p. 259

(18) देखिए भारत सरकार के बजट की दस्तावेज़ात
http://indiabudget.nic.in/

(19) Siba Sankar Mohanty; "Union Budget 2009-10 Does not have a Pro Poor Orientation", @ countercurrents.org

(20) Luisa Kroll, "The World's Billionaires", FORBES, 03-05-08

(21) http://en.wikipedia.org/wiki/tax_rates_around_the_world

(22) "Rich get richer, rest get consolation", Business Standard, July 7, 2009

(23) Economic Survey 2008-09, Govt. of India, Ministry of Finance.

(24) Rao, CHH (1995), Liberalization of Agriculture in India, some major issues, Indian Journal of Agri. Economics, Vol. 50, No. 3

(25) तफ़सील के लिए देखें Gosh Jayati and Chandrashekhar P (2005) "The

Burden of Farmers' Debt", @ Macroscan.
(26) Jackie Assayag; "Seeds of Wrath: Agriculture, Biotechnology and Globlization" in "Globalizing India, Perspectives from below" Anthem Press, Delhi 2005
(27) P. Sainath, "Ways of Seeing"; Seminar-595 (March 2009)
(28) Dharmendra Kumar, "Pushing big box retail in agriculture" Seminar-595 (March 2009)
(29) Appendix 2: Starving and Stunting the People, Aspects of India's Economy No. 36 and 37.
(30) Patnaik P. "The Crisis of India's Countryside" as quoted in Pravern jhe and Mario Nagre; "Indian Economy in the Era of Contemporary Globlisation",@macroscan.com
(31) Raj Patel, "Stuffed and Starved", Protobello Books, Landon 2007
(32) Report, Census of India 2001, Economic Activity
(33) UNDP, "INDIA: URBAN POVERTY REPORT 2009", UNDP, Ch. 1
(34) (PIB Press Release dated Tuesday, July 07, 2009)
(35) UNDP, "INDIA: URBAN POVERTY REPORT 2009", UNDP, Ch. 3
(36) UNDP, "INDIA: URBAN POVERTY REPORT 2009", UNDP, Ch. 8
(37) UNDP, "INDIA: URBAN POVERTY REPORT 2009", UNDP, Ch. 16
(38) "ENTRY OF CORPORATE HOUSES IN RETAIL TRADE— THE VIEW POINT OF TRADERS", Report of Confederation of Indian Traders.
(39) "Corporate Hijack of Retail"; A study by Navdanya/ Reseach Foundation for Science, Technology and Ecology.
(40) Walter Fernandes; "Paying the Price for Someone Else's Displacement"; Infochange News & Features, July 2008
(41) Pranami Garg 2007. "Lengpui Airport: The Veiled and the Real Victims," Paper presented at the National Seminar on Internally Displaced Persons in the Northeast, Silchar: Assam University, February 8-9
(42) Walter Fernandes and Gita Bharali 2006. Development—Induced Displacement in Assam 1947-2000: A Quantitative and Qualitative Study of Its Extent and Nature. Guwahati: North Eastern Social Research Centre.
(43) Factfile, Seminar-582; February 2008
(44) वही
(45) Jean-Paul Marhoz et. al. "Anti-union Repression in the Export Processing Zones" International Confederation of Free Trade Unions; 1996
(46) देखिए "Tax Benefits to SEZ Units", @ www.sezindianvest.com
(47) Factfile, Seminar-582; February 2008.

☆☆☆